शैक्षिक मंथन

(द्विभाषी मासिक)

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

वर्ष : 16 अंक : 6 1 जनवरी 2024

पौष मास, विक्रम संवत् 2080

परामर्श

के.नरहरि

डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल

जगदीश प्रसाद सिंघल

शिवानन्द सिन्दनकेरा

जी. लक्ष्मण

महेन्द्र कुमार

❖

सम्पादक

प्रो. शिवशरण कौशिक

❖

संपादक मंडल

प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय

प्रो. ओमप्रकाश पारीक

डॉ. एस.पी. सिंह

प्रो. दीनदयाल गुप्ता

भरत शर्मा

❖

प्रबन्ध सम्पादक

महेन्द्र कपूर

❖

व्यवस्थापक

बसंत जिंदल

❖

प्रेषण प्रभारी : **नौरंग सहाय 'भारतीय'**

प्रकाशकीय कार्यालय
82, पटेल कॉलोनी, सरदार पटेल मार्ग,
जयपुर (राजस्थान) 302001
दूरभाष : 9414040403

दिल्ली ब्यूरो :
शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13,
कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली - 110053

E-mail :
shaikshikmanthan@gmail.com
Visit us at :
www.shaikshikmanthan.com

वार्षिक शुल्क ₹ 250/-
दस वर्षीय शुल्क ₹ 2000/-

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर

शैक्षिक मंथन मासिक में प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है तथा चित्रों का प्रतीकात्मक प्रयोग किया गया है।

प्राथमिक कक्षाओं का भाषा शिक्षण ❑ डॉ. सीमा मंगल

जहाँ तक प्राथमिक कक्षाओं के भाषा के माध्यम की बात है, तो मेरा मानना है कि प्राथमिक स्तर पर बालक विद्यालय में जाना प्रारम्भ करता है तथा वह अपने घर की भाषा अथवा मातृभाषा से परिचित होता है इसलिए सहज व सरल रूप से मातृभाषा में अधिगम कर सकता है तथा उसके लिए मातृभाषा में शिक्षण रुचिकर व आनंददायी भी होता है। परन्तु प्राथमिक स्तर पर ही भाषा शिक्षण के चारों कौशलों का ज्ञान कराकर सहज व सरल रूप से दूसरी भाषा में दक्ष बनाया जा सकता है।

4

अनुक्रम

3.	संपादकीय	- प्रो. शिवशरण कौशिक
9.	स्वाभाविक अधिगम	- हिमांशु दाधीच
12.	सीखने का आनंद (बच्चों के साथ मेरे प्रयोग)	- हंसराज तंवर
16.	प्राथमिक कक्षाओं में गणित शिक्षण की विधियाँ	- महेन्द्र कुमार गुप्ता
20.	शिक्षा के वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सहयोगी अधिगम विधियाँ	- डॉ. सुमन बाला
23.	हमें आविष्कारकर्ता चाहिए या चुपड़ी रोटी? मातृभाषा...	- डॉ. राघव प्रकाश
25.	प्राथमिक स्तर पर विज्ञान प्रयोगशाला की पहल	- संदीप जोशी
29.	स्वामी विवेकानन्द का शिक्षा दर्शन	- डॉ. कृष्ण चन्द्र गोस्वामी
33.	प्राथमिक कक्षाओं में प्रार्थना सभा व बाल ...	- संदीप पारीक
35.	ग्रामीण बाल खेलों की आवश्यकता	- रामविलास जांगिड़
37.	प्राथमिक शिक्षा की आनंददायी शिक्षण प्रविधियाँ	- आशा सुमन
39.	प्रारम्भिक कक्षाओं के शिक्षण में मेरे अनुभूत प्रयोग	- श्रीमती इन्दुप्रभा शर्मा
42.	प्राथमिक शिक्षा में पठन-पाठन	- शान्ति लाल जीनगर
45.	शिक्षा और संस्कार एक दूसरे के पर्याय	- प्रकाश वया

Ganitha Kalika Andolana – A Joyful Way of Learning Math

❑ **Pushpa Thantry**

Teacher as a Facilitator Mathematics can become linear and passive when teachers enter a classroom to "teach" how to solve a given abstract problem. However, we want mathematics to be a dynamic subject. This shift will only happen when we go from being teachers to facilitators. So, what is the difference? Traditionally, a teacher has always been someone who feeds into the students' brains all the information they need without necessarily considering their intelligence and inner knowledge. On the other hand, a facilitator takes her students through a lesson by inviting their voices and gently nudging them to construct their learning.

48

संपादकीय

प्रो. शिवशरण कौशिक
संपादक

शैक्षिक मंथन का यह विशेषांक बालकों की शिक्षा में आनंद और सर्जनात्मकता को समर्पित है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी सीखने की सर्वाधिक उर्वर अवस्था बाल्यकाल ही है, क्योंकि इस आयु में बालक की स्मृति, जिज्ञासा, उल्लास और रचनात्मकता अत्यधिक तीव्र और प्रखर होते हैं। इसलिए प्राथमिक कक्षाओं में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शिक्षा मूलत: उनकी बीज-रूप शिक्षा है। यही उनके भावी जीवन का आधार है।

भारत की मूल प्रकृति बीज-रूप है, प्रकृति का मूल भी बीज ही है।'दशरूपक' के अनुसार- प्रकृति की पाँच स्थितियों में से पहली स्थिति बीज है। उसमें कहा गया है कि ''स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्धेतुर्बीजम विस्तार्यनेकधा'' अर्थात् किसी आकृति अथवा रूप के आरंभ में स्वल्पसंकेतिक वह हेतु (कारण) जो अनेक विधि विस्तृत होता हुआ इष्ट या फल का कारण होता है, बीज है। जैसे बीज से अनेक शाखाओं और पल्लवों से युक्त वृक्ष उत्पन्न होता है, वैसे ही बीज-प्रकृति का बीज-न्याय (न्यायपरायणता) भारतीय दर्शन में प्रमुखता से दिखाई देता है।

भारत की यह बीज-संस्कृति ही कालांतर में कृषि संस्कृति और श्रम संस्कृति कहलाई। इसे यूं समझा जा सकता है कि हमारा किसान सदियों से बीज को उर्वर भूमि में समग्र संचेतना के साथ बोने-उगाने के उपरांत उसकी निराई, गुड़ाई, सम्यक कटाई, छँटाई आदि करता है और निरंतर उसकी देखभाल तथा सुरक्षा भी करता है। उस बीज के अंकुरण से लेकर विकास के विभिन्न चरणों की भी पूरी तरह से संभाल करता है। यहाँ तक, कि फसल पकने के बाद भी उसके प्रत्येक अवयव को उपयोगिता के आधार पर अलग-अलग करते हुए संरक्षित करता है। तथाकथित विकास के अभी कुछ दशक ही बीते हैं जब से किसान अपने द्वारा उत्पन्न किए हुए अन्न में से बीज का भाग निकाल कर रखना बंद कर चुके हैं। अधिक फसल पाने की अभीप्सा में किसान बाजार के पैकेट बंद बीज को उगाने के लिए बाध्य हैं। यह हमारे सदियों से चले आ रहे बीज-न्याय का स्वाभाविक विलोपन है। बीज से अंकुर और अंकुर से बीज का अनादि न्याय ही बीज-न्याय है।

इसी प्रकार बालकों की प्राथमिक शिक्षा भी उनकी बीज-शिक्षा ही है जो उन्हें भविष्य का फलदार-फूलदार शिक्षित वृक्ष बनाती है। भारतीय शिक्षा पद्धति में भी यह बीज शब्द विद्या-परंपरा के कारण अर्थवान् रहा है। हमारे कुछ जीवन-साधक मंत्रों को 'बीज-मंत्र' कहा गया तथा जिन मूल अक्षरों से मंत्रों का आरंभ होता है, उन्हें 'बीजाक्षर' कहा गया है। भाषा की दृष्टि से भी कुछेक अधिप्रयुक्त अक्षर, वर्ण आदि का सर्वाधिक महत्त्व होता है। इन्हीं के व्यवस्थित क्रम को भाषा कहा गया है जिनका प्रयोग सुनने, बोलने, पढ़ने तथा लिखने में किया जाता है। महत्त्वपूर्ण यह है कि शिक्षा का यह बीज-उद्देश्य कितना रोचक, आनंददायी, बालकों को हँसाने वाला और खेल खेल में जिज्ञासु बनाने वाला है !

प्रश्न यह है कि क्या आज हम अपने शिशुओं को प्राथमिक शिक्षा में भारत की इस बीज-रूप शिक्षा-संस्कृति से परिचित करवा रहे हैं या नहीं! निश्चित ही कोई राष्ट्र अपने नागरिकों, विद्यार्थियों को जीवन के हर क्षेत्र की गहनतम जानकारी स्वस्थ वातावरण में दिये बिना उन्नति नहीं कर सकता। इसलिए बालक की आंतरिक क्षमताओं तथा आकांक्षाओं की प्राप्ति में घर-परिवार तथा विद्यालय के स्वस्थ वातावरण की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। इसी से देश के करोड़ों बाल-विद्यार्थियों की नई पीढ़ी को शिक्षित और संस्कारवान् बनाया जा सकता है।

प्राथमिक शिक्षा को आनंददायी बनाने के उद्देश्य से ही भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की उद्धभावना की गई है। इसमें कहा गया है कि प्राथमिक कक्षाओं में बालकों को विभिन्न भारतीय भाषाओं का शिक्षण, विज्ञान शिक्षण, गणित शिक्षण, सामाजिक, भौगोलिक व सांस्कृतिक विषयों का शिक्षण उसकी मातृभाषा में ही कराया जाना चाहिए। वस्तुत: राष्ट्रीय आकांक्षाओं की अनुभूति भी बालकों को बीज रूप में प्राथमिक कक्षाओं से ही कराया जाना सिद्धांतत: उपयुक्त है, जबकि उनके कोमल मन पर महापुरुषों के जीवन व्यवहार, उनके आदर्शों का प्रभाव सीधे-सीधे पड़ता है, वह अपनी संस्कृति, देश, भाषा और जीवन मूल्यों से परिचित होता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के आने के बाद बहुत सी शिक्षण संस्थाओं में शिक्षकों ने बालकों को शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास के अनेक तत्त्वों और अनुभवों से साक्षात्कार कराया है। विश्वभर के शिक्षाविद तथा मनोवैज्ञानिक यह स्वीकार करते हैं कि बच्चों में सद्गुण और संस्कारों की स्थापना आरंभिक जीवन में अधिक प्रभावी ढंग से की जा सकती है।

छोटे बच्चों को कहानी सुनना, गीत, कविता गाना तथा खेल खेलना बहुत प्रिय होता है। वह अपनी छोटी अवस्था में घर से ही इस प्रकार के क्रियाकलापों में रुचि लेकर सर्वाधिक आनंद की अनुभूति भी करता है। इसलिए शिक्षण के क्षेत्रों में किए गए छोटे-छोटे प्रयोग और अनुभवों को शिक्षक अपनी कक्षाओं में उपयोग में ले सकते हैं। वर्षों से देश में आनंददायी पद्धति से शिक्षण कार्य करने वाली हजारों बाल वाटिकाएँ, आंगनवाड़ी केंद्र, सरस्वती शिशु मंदिर, बाल गोकुलम्, संस्कार केंद्र, एकल विद्यालय जैसी संस्थाएँ निरंतर कार्य कर रही हैं।

शैक्षिक मंथन के इस अंक में प्राथमिक कक्षाओं में हिन्दी, विज्ञान, गणित आदि की आनंददायी शिक्षण विधियों पर केंद्रित कुछ लेख तथा कक्षाओं में स्वयं शिक्षकों द्वारा किए गए स्वानुभूत रोचक प्रयोग निस्संदेह पठनीय और अवलोकनीय हैं जो प्राथमिक शिक्षा में कार्य कर रहे शिक्षकों तथा अभिभावकों के लिए उपयोगी होंगे, इसी आकांक्षा के साथ! ❑

प्राथमिक कक्षाओं का भाषा शिक्षण

डॉ. सीमा मंगल
प्रोफेसर शिक्षा संकाय,
निर्वाण विश्वविद्यालय,
जयपुर (राज.)

बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया यह कथन निश्चित रूप से सार्थक है क्योंकि मानव समाज को विधाता की ओर से सबसे बड़ा वरदान मिला है वह वाणी (भाषा) ही है। भाषा के कारण ही मनुष्य, मनुष्य है और सभी जीवधारियों में सर्वोच्च है। भाषा ही मानवीय विचारों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। भाषा संसार का नादमय चित्र है, ध्वनिमय स्वरूप है तथा विश्व की हृदयतंत्री की झंकार है।

काव्यादर्श में कहा गया है - यदि शब्द रूपी ज्योति से यह संसार प्रदीप्त न होता, तो समस्त संसार अन्धकारमय हो जाता।

भाषा एक ओर व्यक्तित्व का विकास और अभिव्यक्ति का माध्यम है तो दूसरी ओर समाजीकरण का साधन, एक ओर समाज में संप्रेषण व्यवस्था का उपकरण है तो दूसरी ओर राष्ट्रीय एकता की पोषक। अत: भाषा का राष्ट्र, समाज और व्यक्ति के जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। परन्तु विडम्बना यह है कि भाषा को अक्सर अभिव्यक्ति का माध्यम भर माना जाता है और इसी के अनुरूप भाषा की कक्षाओं की शिक्षण प्रक्रिया संचालित होती है। जहाँ भाषा को केवल एक विषय के रूप में पढ़ाया जाता है। पाठ्यपुस्तक साधन की बजाय साध्य बनकर रह जाती हैं और सारा ध्यान भाषा सीखने की बजाय पाठ के पीछे के अभ्यास हल करने तथा उच्चारण और लिपि की शुद्धता तक सीमित होकर रह जाता है जबकि भाषा शिक्षण का क्षेत्र अधिक व्यापक तथा विशद् है तथा अन्य विद्यालय विषयों से शिक्षण की प्रक्रिया भी भिन्न है। भाषा हमारी समझ का आधार है। यह विचार करने, तर्क करने, चिन्तन करने, दूसरों की बात समझने जैसे बहुत से काम करती है। भाषा हमें समाज से जोड़ती है, समाज में अपना स्थान सुनिश्चित करने में मदद करती है, राष्ट्रीय व अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलवाती है अत: भाषा को इस स्तर तक विकसित करने की जिम्मेदारी विद्यालयों की मानी जाती है। विद्यालयों में प्राथमिक कक्षाओं से ही भाषा शिक्षण पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

बालक जब विद्यालय में प्रवेश लेता है तो उसको अपनी भाषा (मौखिक) का ज्ञान होता है, वह अपनी भाषा में वाक्य रचना करने का प्रयास करता है। हाँ, किताबी या विद्यालयी भाषा से वह अपरिचित हो सकता है, उसे सीखने में प्रारंभिक स्तर पर कठिनाई भी महसूस हो सकती है। ऐसी स्थिति में बालक की भाषा और पुस्तक की भाषा (मानक भाषा) के बीच पुल बनाकर उसे पार लेकर आने के लिए भाषा शिक्षक की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाती है। प्राथमिक कक्षाओं के शिक्षक को अपनी शिक्षण प्रक्रिया ऐसी बनानी चाहिए कि भाषा सीखना बालक के लिए सरल व सहज प्रतीत हो, उसकी भाषा सीखने में रुचि बढ़े तथा वह मौखिक अभिव्यक्ति

आसानी से कर सके। इसके लिए प्राथमिक कक्षाओं में शिक्षक व छात्र के मध्य संवाद अत्यन्त आवश्यक है।

बालक के व्यक्तित्व निर्माण में तथा संवाद में ये दक्षताएँ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं- सुनना, बोलना, पढ़ना लिखना, विचारों को समझना (सुन करके और पढ़ करके), जरूरी व्याकरण की जानकारी, खुद से सीखना, भाषा का उपयोग और शब्द कोश पर पकड़ आदि। ये सभी दक्षताएँ दूसरे क्षेत्रों के सम्प्रत्ययों को समझने में भी महत्त्वपूर्ण हैं अतः भाषा शिक्षक को बालक की नींव को मजबूत करने के लिए प्राथमिक स्तर से ही ध्यान देना आवश्यक है। इस आयु स्तर पर बालक की बुद्धि का विकास तीव्र गति से हो रहा होता है। बालक को जो कुछ भी सिखाया जाता है वह उसके मन व मस्तिष्क में स्थायित्व प्राप्त कर लेता है अतः भाषा शिक्षक बालक के बाल मन को टटोलते हुए विद्यालय में भाषा शिक्षण की ऐसी रोचक व आनंददायी गतिविधियाँ करवाए कि बालक के भाषाई कौशल का विकास तीव्र गति से हो सके। इसके लिए कक्षा में कहानी कहना व सुनना, नाटक आयोजित करना, दैनिक जीवन पर आधारित संवाद करना, गीत व संगीत के कार्यक्रमों का आयोजन करना, चित्रों वाली किताबों पर चर्चा करना आदि सम्मिलित किए जाने चाहिए। बच्चों को भय व तनाव के वातावरण से दूर रखकर स्वस्थ वातावरण का निर्माण करना चाहिए तथा भाषा शिक्षण के चारों कौशलों के ज्ञान का विकास आवश्यक रूप से करना चाहिए क्योंकि भाषा शिक्षण का सीधा उद्देश्य विद्यार्थी को इन कौशलों में दक्ष बनाना है। अतः प्राथमिक शिक्षक की संपूर्ण तैयारी इन कौशलों के विकास पर केन्द्रित होनी चाहिए ताकि बालक भाषा के प्रयोग में कुशल हो सके।

भाषा शिक्षण के कौशल

जब बालक पैदा होता है तब उसकी अपनी कोई भाषा नहीं होती है। भाषा से अनजान बालक जब वातावरण के सम्पर्क में आता है तो वह अपनी माँ, आसपास के परिवेश व परिवार जनों से जिस भाषा के शब्द सुनता है वह उसके मस्तिष्क पटल पर अंकित हो जाते हैं। जब वह लगभग 1/2 2 वर्ष का हो जाता है तो धीरे-धीरे वही भाषा बोलने लग जाता है। ये सब बालक अनौपचारिक रूप से सीखता है लेकिन जब उसको विद्यालय भेजा जाता है तो वह विद्यालय में औपचारिक रूप से पढ़कर तथा लिखकर शुद्ध व मानक भाषा सीखता है। अतः किसी भी भाषा को सीखने के लिए चार कौशलों की आवश्यकता होती है जो कि क्रमशः इस प्रकार हैं –

1. सुनना/श्रवण कौशल (Listening Skill)

यह भाषा शिक्षण का प्रथम कौशल है। अन्य तीनों कौशलों का विकास श्रवण कौशल के बाद होता है। श्रवण शब्द संस्कृत की श्रु धातु से बना है जिसका अर्थ है सुनना। अर्थात् किसी व्यक्ति द्वारा प्रयुक्त वाक्यों, शब्दों, ध्वनियों एवं विचारों को कानों के द्वारा सुनकर अर्थ ग्रहण करने की क्रिया श्रवण कौशल कही जाती है।

> **जहाँ तक प्राथमिक कक्षाओं के भाषा के माध्यम की बात है, तो मेरा मानना है कि प्राथमिक स्तर पर बालक विद्यालय में जाना प्रारम्भ करता है तथा वह अपने घर की भाषा अथवा मातृभाषा से परिचित होता है इसलिए सहज व सरल रूप से मातृभाषा में अधिगम कर सकता है तथा उसके लिए मातृभाषा में शिक्षण रुचिकर व आनंददायी भी होता है। परन्तु प्राथमिक स्तर पर ही भाषा शिक्षण के चारों कौशलों का ज्ञान कराकर सहज व सरल रूप से दूसरी भाषा में दक्ष बनाया जा सकता है।**

प्राथमिक कक्षाओं में शिक्षक का यह कर्तव्य है कि वह अपने विद्यार्थी को उत्तम श्रोता बनाने का प्रयास करें ताकि बालक सुनने के कौशल का सार्थक प्रयोग कर सके।

बालक जन्म से ही अपने परिवेश के सम्पर्क में आकर ध्वनियाँ सुनने लगता है इसमें कुछ ध्वनियाँ सार्थक होती हैं, कुछ निरर्थक। धीरे-धीरे वह ध्वनियों के अर्थ को महसूस करने लगता है। विद्यार्थी की शिक्षा उसकी श्रवण क्षमता पर ही आधारित होती है। प्राथमिक स्तर से ही बालक को सुनने के शिष्टाचार का पालन करते हुए धैर्य एवं एकाग्रता से सुनने का अभ्यास करवाया जाना चाहिए। इसके लिए प्रेम, हास्य, करूणा, भय, उत्साह आदि भावों से युक्त संवाद बच्चों को सुनाए जाने चाहिए जिससे बच्चों की शिक्षण में रुचि विकसित होगी। जब बालक ध्यानपूर्वक बातों को सुनकर समझने का प्रयास करेगा तो उसके अन्दर सुनने के कौशल का विकास होगा इसके लिए शिक्षक निम्न विधियाँ प्रयोग में ले सकता है –

(i) कहानी कहना तथा सुनना – बालकों को रोचक कथाएँ, कहानियाँ जैसे राजा रानी, पशु-पक्षियों आदि की कहानी सुनानी चाहिए इसके पश्चात् उसी कहानी को बालकों से सुनना चाहिए इससे यह पता लगेगा कि बालकों ने कहानी ध्यानपूर्वक सुनी है या नहीं।

(ii) प्रश्नोत्तर – शिक्षक पढ़ाई गई सामग्री कहानी या प्रसंग आदि में से प्रश्न पूछे ताकि बालक की श्रुत क्षमता का पता लग सके। इसके लिए कहानी में कुछ हेर-फेर करके जैसे – लोमड़ी को पेड़ पर अमरूद (अंगूर के स्थान पर) लटके हुए दिखाई दिए। सुनाएँ और फिर प्रश्न पूछें कि पेड़ पर क्या लटके हुए थे। यदि बालक ने ध्यानपूर्वक कहानी सुनी होगी तो सही उत्तर देगा अथवा पहले से रटा रटाया जबाव देगा।

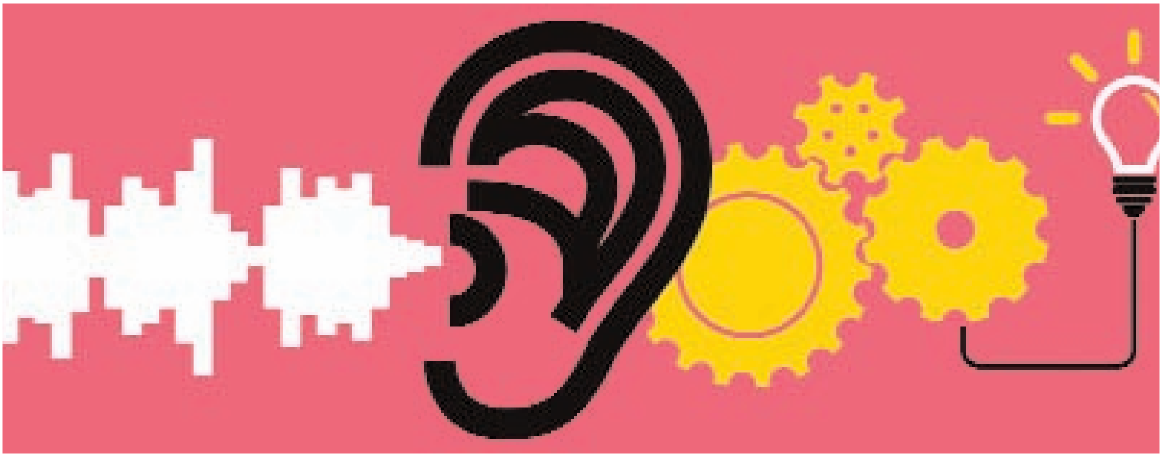

(iii) आदर्श वाचन – शिक्षक द्वारा पाठ को पढ़ने से छात्र शुद्ध उच्चारण, गति, विराम चिन्हों आदि का ज्ञान करते हैं । शिक्षक को चाहिए कि वह छात्रों से अनुकरण वाचन भी करवाए।

(iv) दृश्य श्रव्य सहायक सामग्री का प्रयोग – दृश्य श्रव्य सामग्री जैसे टेपरिकॉर्डर, रेडियो, चलचित्र, दूरदर्शन, ग्रामोफोन आदि साधनों की सहायता से कहानी, कविता, नाटक तथा विभिन्न शैक्षिक व मनोरंजन कार्यक्रम सुने जा सकते हैं इससे छात्रों में शिक्षण के प्रति रुचि विकसित होती है तथा मनोरंजन के साथ-साथ श्रवण कौशल का भी विकास होता है।

2. बोलना / कथन कौशल

सुनना और बोलना एक-दूसरे पर आधारित हैं क्योंकि हम जैसा सुनते हैं, वैसा ही बोलते हैं तथा जैसा बोलते हैं, वैसा ही लिखते हैं । अत: हमारा उच्चारण शुद्ध होना चाहिए। शुद्ध उच्चारण के अभाव में भाषा का वास्तविक स्वरूप विकृत हो जाता है। इसके लिए ध्वनियों का ज्ञान होना आवश्यक है अत: बालक की प्राथमिक कक्षाओं से ही यह आदत डालनी चाहिए कि वह शुद्ध उच्चारण करे। बालक को भाषा की मानक ध्वनियों व उनके उच्चारण स्थान का ज्ञान प्रारम्भ से ही करा देना चाहिए।

सामान्यत: 2 वर्ष का बालक बोलना सीख लेता है लेकिन क्या बोला जाए और कैसे बोला जाए, कई बार इसे उम्र भर नहीं सीख पाता है। बोलने का अपना एक शिष्टाचार होता है जो संदर्भ और व्यक्ति के साथ बदलता रहता है। अपने भावों व विचारों को सटीक रूप में व्यक्त करने का कौशल मौखिक अभिव्यक्ति है। प्राथमिक कक्षाओं से ही बालक को अपने अनुभवों व विचारों की अभिव्यक्ति के अधिक से अधिक अवसर देकर मौखिक अभिव्यक्ति के कौशल को निखारा जा सकता है। ये अवसर शिक्षक निम्न विधियों के माध्यम से दे सकता है –

(i) अभ्यास विधि – कहा जाता है 'करत-करत अभ्यास ते, जड़मति होत सुजान।' अत: बालक को शुद्ध उच्चारण का बार-बार अभ्यास करवाया जाए इसके लिए एक समान शब्द जैसे सीता गाती है। राधा नाचती है, रमा सोती है, आदि का अभ्यास करवा सकते हैं।

राम, शाम, काम तथा एक समान वाक्य जैसे – सीता गाती है। राधा नाचती है, रमा सोती है, आदि का अभ्यास करवा सकते हैं।

ध्वनियाँ व उनके उच्चारण स्थान

ध्वनियाँ	**उच्चारण स्थान**	**मूल सूत्र**
अ, आ, क वर्ग के वर्ण, ह तथा विसर्ग	कण्ठ	अकुहविसर्जनीयानां कण्ठ:
इ, ई, च वर्ग केवर्ण, य तथा श	तालु	इचुयशानां तालु:
ऋ, ट वर्ग के वर्ण, र तथा ष	मूर्धा (मसूढ़े)	ऋटुरषाणां मूर्धा
लृ, त वर्ग के वर्ण, ल तथा स	दन्त	लृतुलसानां दन्ता:
उ, ऊ, प वर्ग के वर्ण तथा उपध्मानीय	ओष्ठ	उपूपध्मानीयानांमोष्ठौ
ङ, ञ, ण न, म	नासिका	ञमङणनानां नासिका च
ए और ऐ	कण्ठ तथा तालु	एदैतो: कण्ठतालु:
ओ और औ	कण्ठ तथा ओष्ठ	ओदौतो: कण्ठोष्ठम्
व	दन्त तथा ओष्ठ	वकारस्य दन्तोष्ठम्

(ii) अनुकरण विधि – शिक्षक के द्वारा बच्चों को कहानी कविता आदि सुनाकर उनसे अनुकरण करवाना चाहिए जिससे वे शुद्ध बोलना सीखते हैं। कविता की एक-एक पंक्ति का दोहरान भी करवाया जा सकता है।

(iii) तुरन्त सुधार विधि – बालक के द्वारा जैसे ही किसी वर्ण का उच्चारण अशुद्ध किया जाए उसमें तुरंत सुधार किया जाना चाहिए जिससे प्रारम्भ से ही शुद्ध उच्चारण की आदत का विकास किया जा सके।

(iv) वाक्य संशोधन विधि – अनेक बार बालक अलग अलग वर्ण या शब्द का उच्चारण शुद्ध कर लेता है लेकिन वही वर्ण या शब्द वाक्य में अशुद्ध बोलता है अतः सम्पूर्ण वाक्य का उच्चारण करवाकर भी अशुद्ध शब्दों को शुद्ध करवाए जाने चाहिए।

(v) निरीक्षण विधि – शिक्षण को रुचिकर बनाने के लिए प्रत्यक्ष वस्तु चित्र या चार्ट आदि दिखाकर भी उच्चारण का अभ्यास करवाया जा सकता है।

(vi) निदानात्मक परीक्षण एवं उपचारात्मक शिक्षण – अशुद्ध उच्चारण के अनेक कारण हो सकते हैं। जैसे ध्वनियों के ज्ञान का अभाव, क्षेत्रीय प्रभाव, वाणी सम्बन्धी दोष, मनोवैज्ञानिक कारण इत्यादि। उपयुक्त कारण की जानकारी करके उसका सही उपचार करना ही निदानात्मक परीक्षण एवं उपचारात्मक शिक्षण है।

3. पढ़ना / पठन कौशल

लिखित सामग्री को पढ़ते हुए अर्थग्रहण करने की क्रिया पठन कौशल कहलाती है। पाठक जैसे-जैसे शब्दों व वाक्यों को पढ़ता जाता है उनका अभिधेयार्थ (प्रत्यभिज्ञान) समझता हुआ उसमें निहित अर्थ व भाव को ग्रहण करता है तथा लेखक का मन्तव्य समझकर उसका मूल्यांकन करता है और उसे आत्मसात कर जीवन में प्रयोग करता है। इस प्रकार पठन प्रक्रिया के चार सोपान हैं **प्रत्यभिज्ञान, अर्थग्रहण, मूल्यांकन व अनुप्रयोग।**

प्राथमिक कक्षाओं के शिक्षक को बालकों को पढ़ाते समय पहले स्वयं पाठ का आदर्श वाचन कर बच्चों से उसका अनुकरण वाचन करवाना चाहिए तथा स्वयं यह निरीक्षण करें कि उनकी वाचन शैली व वाचन मुद्रा सही है या नहीं। बालक शुद्ध व स्पष्ट उच्चारण करते हुए हाव-भाव, गति एवं विराम चिह्नों का सही प्रयोग करते हुए पढ़ें। पुस्तक को उचित विधि (आँखों से एक फीट की दूरी) से पकड़ें तथा भावों के अनुरूप मुख मुद्रा रखें।

पठन की नीरसता को दूर कर उसे रुचिकर व आनंददायी बनाना प्राथमिक शिक्षक का उद्देश्य होना चाहिए इसके लिए वह निम्न विधियों का उपयोग कर सकता है –

(i) वर्णोच्चारण विधि – शिक्षक बार-बार स्वर एवं व्यंजन वर्णों को पढ़वाकर उनका शुद्ध उच्चारण करवाए। इस कार्य को वह बालक से व्यक्तिगत रूप से भी पढ़वाकर सुने तथा सामूहिक पठन भी करवाए।

(ii) ध्वनि साम्य विधि – प्राथमिक कक्षाओं की पुस्तकों में समान ध्वनि वाले शब्दों के पाठ दिए हुए होते हैं। जैसे – गाना, आना, जाना, रोना आदि। यह भी बालकों के पठन को आनंददायी बनाता है।

(iii) वाक्य गठन विधि – एक जैसे वाक्य जैसे राम विद्यालय जाता है। मोहन मैदान में दौड़ता है। आदि के पठन अभ्यास से बालक वाक्य बनाना सीख जाते हैं।

(iv) देखो और कहो विधि – चित्र के नीचे वस्तु का नाम लिखा होने से बालक पढ़ने के साथ-साथ वस्तु की पहचान करना

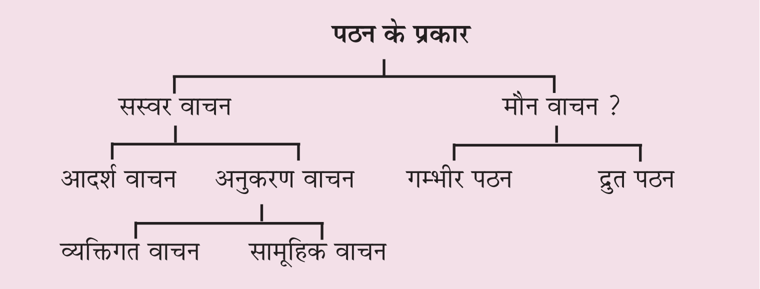

सीख जाते हैं ।

(v) सामूहिक पठन विधि – प्रार्थना, गीत, दोहा, कविता की पंक्तियाँ आदि का सामूहिक रूप से पठन करवाने से भी शिक्षण रुचिकर हो जाता है।

(vi) अनुकरण विधि – शिक्षक स्वयं आदर्श वाचन कर उसका ज्यों का त्यों अनुकरण वाचन करने के लिए कह सकते हैं।

4. लिखना/लेखन कौशल

जब हम अपने विचारों या भावों को लिखकर अभिव्यक्त करते हैं तो उसे लेखन कौशल कहते हैं। यह भाषा शिक्षण का अन्तिम कौशल है। इसके माध्यम से अपने भावों व विचारों को शुद्ध व क्रमबद्ध रूप से प्रकट करने की क्षमता विकसित होती है। बालकों को पत्र, निबन्ध, कविता, कहानी अनुलेख आदि को लिखने में दक्ष बनाना ही इस कौशल का उद्देश्य है। यदि लेखन में विराम चिन्हों का उचित प्रयोग करते हुए प्रसंग के अनुरूप शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों, सूक्तियों आदि का प्रयोग किया जाए तो लेखन में चार चाँद लग जाते हैं।

प्राथमिक कक्षाओं में बालक क्रमबद्ध रूप से अक्षर, शब्द तथा छोटे-छोटे वाक्यों द्वारा लिखना सीखते हैं। शिक्षक को इस स्तर पर ही बालक को शुद्ध व स्पष्ट रूप से लिखने का अभ्यास करवाना चाहिए। बालकों की लिखावट सुन्दर व अक्षर सुडौल होने चाहिए क्योंकि इस समय जैसा लिखने की आदत हो जाती है वैसी ही आदत भविष्य में भी बनी रहती है। प्राथमिक स्तर पर लिखना सिखाने की विधियाँ हैं?

(i) रूपरेखा विधि – इस विधि में शिक्षक अक्षरों की बनावट में बिन्दु-बिन्दु बनाकर बालकों से रेखा खिंचवाते हैं तो वे सुन्दर व सुडौल अक्षर बनाना सीख लेते हैं।

(ii) स्वतंत्र अनुकरण विधि – शिक्षक श्यामपट्ट, कॉपी या स्लेट पर अक्षर बनाते हैं, छात्र देखकर स्वयं अक्षर बनाना सीखते हैं।

(iii) मॉन्टेसरी विधि – बालकों को लकड़ी या गत्ते पर बने अक्षरों पर अंगुली फेरकर रंगीन पेंसिल घुमाने के लिए कहा जाता है।

(iv) पेस्टोलॉजी विधि – अध्यापक वर्णों के टुकड़े करके फिर उन टुकड़ों को मिलाकर अक्षरों का ज्ञान करवाता है। जैसे- क – 01 क।

(v) जेकटॉट विधि – शिक्षक विद्यार्थियों द्वारा पढ़े गए वाक्य को स्वयं लिखकर छात्रों को लिखने के लिए कहते हैं। छात्र मिलाकर संशोधन करते हैं।

(vi) चित्र वर्णन विधि – छात्रों के समक्ष कहानी से सम्बन्धित क्रमबद्ध रूप से चित्र प्रस्तुत कर उनका वर्णन लिखने के लिए दिया जा सकता है।

(vii) प्रश्नोत्तर विधि – पढ़ाए गए पाठ में से प्रश्न पूछकर उत्तर लिखने के लिए दिया जा सकता है। इसके अलावा सूची सवाल भी किए जा सकते हैं। जैसे सुबह जागने के बाद आपने क्या-क्या किया ? सूची बनाइए।

इस प्रकार भाषा शिक्षण के इन चारों कौशलों का क्रमबद्ध रूप से ज्ञान कराकर प्राथमिक शिक्षक बालक को भाषा ज्ञान में दक्ष बना सकता हैं। भाषा शिक्षण के ये चारों कौशल परस्पर पूरक हैं। इनका समन्वित अभ्यास विद्यार्थियों की भाषिक क्षमता को उन्नत कर सकता है।

जहाँ तक प्राथमिक कक्षाओं के भाषा के माध्यम की बात है, तो मेरा मानना है कि प्राथमिक स्तर पर बालक विद्यालय में जाना प्रारम्भ करता है तथा वह अपने घर की भाषा अथवा मातृभाषा से परिचित होता है इसलिए सहज व सरल रूप से मातृभाषा में अधिगम कर सकता है तथा उसके लिए मातृभाषा में शिक्षण रुचिकर व आनंददायी भी होता है। परन्तु प्राथमिक स्तर पर ही भाषा शिक्षण के चारों कौशलों का ज्ञान कराकर सहज व सरल रूप से दूसरी भाषा में दक्ष बनाया जा सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि प्राथमिक कक्षाओं का भाषा शिक्षक अपनी जिम्मेदारी तथा बालकों के बाल-मन को समझते हुए भाषा का ज्ञान उनकी रुचियों, अभिवृत्तियों, क्षमताओं तथा व्यक्तिगत विभिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए करवाए, साथ ही कक्षा में आनंददायी गतिविधियाँ करवाए जिससे कि एक सुदृढ़ व सशक्त नींव तैयार हो सके। ❑

स्वाभाविक अधिगम

हिमांशु दाधीच
उप-प्राचार्य
रा.बा.उ.मा.वि.
महर्षि दयानंद मार्ग,
बीकानेर (राज.)

सरजी इसे तो गिनती भी लिखनी-बोलनी नहीं आती। यह सवाल कैसे हल करेगा ? सुनकर एक बार तो मैं चौंक ही गया। कक्षा 05 का विद्यार्थी गिनती भी लिख-बोल नहीं सकता। कैसा विद्यालय है यह ? मन में विचार उठा। एक राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय (कक्षा 01 से 08 तक) में कार्यग्रहण करने के पश्चात् लगभग एक माह में स्थितियाँ एकदम स्पष्ट हो गई। सभी कक्षाओं में ऐसे विद्यार्थियों की संख्या अच्छी-खासी थी जिन्हें विभिन्न विषयों की सामान्य एवं प्रारंभिक जानकारी नहीं थी। मसलन हिन्दी पढ़-लिख नहीं सकता, जोड़-घटाव की छोड़ो; संख्याओं को भी पहचान नहीं पाना, अंग्रेजी में तो काला अक्षर भैंस बराबर; ABCD भी ढंग से लिखनी नहीं आती।

क्या करें ऐसे निरपराध परन्तु शैक्षिक स्तर में पिछड़े होने के फलस्वरूप कक्षा के वातावरण में असमायोजित विद्यार्थियों का? शिक्षक के साथ-साथ कक्षा के दूसरे छात्र-छात्राओं के लिए भी रूकावट और उपहास का केन्द्र थे ऐसे बच्चे। यहाँ पर मैंने रचनाधर्मी और चिन्तनशील व्यक्तियों का संसर्ग किसी समस्या के प्रति हमारे दृष्टिकोण को कैसे बदल देता है, इस बात को सप्रमाण सीखा। जब समस्या पर विचार-विमर्श हुआ; चिन्तन हुआ तो एक सुझाव सामने आया BASIC CLASS चालू करने का। इस कक्षा में सभी कक्षाओं के पिछड़े विद्यार्थी बैठने थे और स्थान तय हुआ विद्यालय का बरामदा जिस पर सभी की नजर रहे व तय हुआ कि सभी अध्यापक समय निकाल कर इन्हें अपने-अपने विषय का प्रारंभिक ज्ञान देंगे।

बच्चे तो बच्चे होते हैं; असीम संभावनाओं से भरे हुए और जोश से लबरेज। जब कोई बात समझ आती है तो वह अच्छी भी लगती है; उसमें रुचि भी उत्पन्न हो जाती है और जो कार्य रुचिकर होता है उसमें थकान कैसी ? 'शिष्य प्रज्ञाप्रबोधनकारणतत्वं गुरुतत्वं' की आर्ष भारतीय संकल्पना छात्रों और शिक्षकों के मिले-जुले प्रयासों में परिलक्षित हुई। लगभग तीन माह में BASIC CLASS के सभी छात्र अपनी मूल कक्षाओं में लौट गए और वहाँ शिक्षकों द्वारा थोड़ा सा अधिक ध्यान दिए जाने, कक्षा के होनहार विद्यार्थियों का सक्रिय सहयोग मिलने और स्वयं के थोड़े से अधिक परिश्रम के चलते शीघ्र ही समायोजित भी हो गए।

यह सब कुछ इतनी सरलता से कैसे

हुआ ? इसकी एक छोटी सी बानगी आपके सम्मुख प्रस्तुत है। हमने पकड़ा बच्चों की घूमने-फिरने की चाह को और फिर इसी को अपना मुख्य साधन बनाया। बच्चे प्राय: लघुशंका का बहाना बनाकर कक्षा से बाहर घूमने की इच्छा रखते थे। हमने प्रत्येक विषय की प्रारंभिक जानकारी देने वाले 10-12 फ्लैक्स बनवा लिए। उदाहरणत: हिन्दी के स्वर, व्यंजन, चार-पाँच अक्षरों तक के अमात्रिक, एकमात्रिक, द्विमात्रिक शब्द, सहपाठियों के नाम, माता-पिता के नाम, शिक्षकों के नाम, गाँव का नाम आदि लिखे हुए फ्लैक्स। अब जिस-किसी को भी कक्षा से बाहर जाना होता था उसे पहले शिक्षक द्वारा स्वयं के लिए निर्धारित फ्लैक्स बोर्ड को पढ़ना होता था। जब वह पढ़ता तो पूरी कक्षा के लिए यह कूतूहल का विषय होता कि वह पूरा पढ़ने में सफल हो कर बाहर जाने में कामयाब हो जाता है या फिर बीच में ही अटक जाता है। इसलिए सारी कक्षा के विद्यार्थी भी उसके साथ-साथ पूरे ध्यान से पढ़ते और निश्चित रूप से स्वत: सीखते भी थे। हाँ यह बात जरूर है कि ऐसा करते-करवाते समय शिक्षकों द्वारा इस बात का सदैव ध्यान रखा जाता था कि जिसे वास्तव में लघुशंका हो रही हो उसे तुरंत पहचानकर जाने दिया जाए।

प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक कक्षाएँ भावी नागरिक तैयार करने की आधारशिला है। इन कक्षाओं में उच्च अधिगम सम्प्राप्ति के मुख्य सूत्र हैं- सुन्दर लिखावट और उच्च स्मरणशक्ति। ''हमें सब कुछ नहीं लिखना है लेकिन जितना लिखना है वह सुन्दर लिखना है।'' सुन्दर लिखावट मस्तिष्क को सुनियोजित, केन्द्रित और सौंदर्यभाव से परिचित करवाने का प्रशिक्षण है। शिक्षक स्वयं सुन्दर लिखें और शुद्ध लिखें तो विद्यार्थी भी सुन्दर और शुद्ध लिखावट में पारंगत होंगे ही।

प्राथमिक और उच्च प्राथमिक कक्षाओं के अध्यापन के दौरान एक मुख्य बात यह भी सामने आई कि आपको जो कुछ भी पढ़ाना है, सर्वप्रथम रोजमर्रा के जीवन में उसकी सार्थकता से विद्यार्थियों को अवगत कराना होगा। इस प्रकार उद्देश्यों के सरल और सुगम स्पष्टीकरण के बिना छात्र-छात्राओं को स्थायी अधिगम की ओर प्रवृत्त करना असंभव होता है। और हाँ, ऐसा करते समय किसी पुरस्कार का प्रलोभव या ऊँचे ग्रेड या अंक प्राप्त करने का स्वप्न दिखाना अधिगम के उद्देश्यों का नितान्त गलत निरूपण होगा; इससे उद्देश्यों का स्तर बहुत ही निम्नकोटि का हो जाएगा। उदाहरण : पत्र-लेखन सिखाते समय भाषा-शिक्षकों द्वारा यह बताया जाना चाहिए कि पत्र-लेखन आने से हम विभिन्न व्यक्तियों एवं कार्यालयों से लिखित संवाद कर अपने जीवन के महत्वपूर्ण कार्य करवा सकते हैं जिससे न केवल हमारा जीवन सरल और आनन्दमय बनेगा अपितु समाज-परिवार में हमारी प्रतिष्ठा भी बढ़ेगी। ऐसा बताए जाने से बालकों को पत्र-लेखन की सार्थकता पता चलेगी और वे सीखने में रुचि लेंगे। इसके विपरीत यदि उन्हें यह बताया जााए कि पत्र-लेखन का अंक भार अधिक है और इसे सीखने से उन्हें अच्छे अंक प्राप्त होंगे तो बहुधा वे इसे नकार देंगे क्योंकि अच्छे अंक लाना उनके लिए हमेशा जरूरी नहीं होता है।

अध्यापन का एक और महत्त्वपूर्ण व्यावहारिक पक्ष है - निरन्तरता। हमने यह अनुभव किया कि जो शिक्षक निरन्तर कक्षा लेते हैं, छात्र भी उनके विषय में रुचि लेते हैं और इसी सिक्के का दूसरा पहलू यह भी है कि जो छात्र नियमित रूप से कक्षा में उपस्थित रहते हैं, शिक्षक स्वाभाविक रूप से उन पर ज्यादा ध्यान देते हैं। इसके सर्वप्रमुख कारण हैं- मानसिक जुड़ाव और अध्ययन की तारतम्यता। शिक्षण-अधिगम में निरन्तरता का अभाव तो बिल्कुल ऐसा ही है जैसे पौधा लगाना और उसे नियमित खाद-पानी नहीं देना। निरन्तरता को बनाए रखने के लिए शिक्षक को न केवल

स्वयं को अनुशासित रखना होगा बल्कि छात्रों से एवं उनके परिवारजनों से संवाद कायम कर उन्हें भी निरन्तर उपस्थिति का महत्व समझाना होगा।

प्राय: देखा जाता है कि शिक्षक अपना अधिकतर समय अपने गैर-शैक्षणिक उत्तरदायित्वों के निर्वहन में व्यतीत करते रहते हैं। इस प्रवृत्ति को बदलना होगा। गैर-शैक्षणिक कार्यों को करने के लिए समय तय होना चाहिए। वस्तुत: गैर-शैक्षणिक कार्य विद्यालय के लिए हों; विद्यालय गैर-शैक्षणिक कार्य के लिए नहीं हो। ऐसे कार्यों की बहुलता शिक्षण-अधिगम के मूल उद्देश्यों एवं मूल प्रवृत्तियों को ही विच्छिन्न कर देती है। उच्च योग्यता धारी और ऊँचा वेतन प्राप्त करने वाले शिक्षकों से तो शिक्षण जैसा उच्चस्तरीय कार्य ही करवाने में राज्य को लाभ है; गैर शैक्षणिक कार्यों के संपादन हेतु तो कम वेतन पर भी स्टाफ भर्ती किया जा सकता है।

छात्रों को नियमित रखने के लिए हमने कई प्रयोग किये। शाला सयम पश्चात् हम अनुपस्थित रहने वाले छात्र-छात्राओं के घर जाते; उनकी अनुपस्थिति का कारण जानने का प्रयास करते। हमें आश्चर्य होता था कि 80 प्रतिशत से 90 प्रतिशत तक मामले अकारण अनुपस्थिति के अथवा टाले जाने योग्य कारणों के थे। महज 10-15 बार के प्रयासों से स्थितियाँ बदल गईं; बच्चे नियमित हो गए। इसके अलावा उच्च उपस्थिति वाले छात्र-छात्रओं के नाम नियमित रूप से भिन्न रंग में शाला-सूचनापट्ट पर लिखना, ऐसे बच्चों के नाम स्वाभाविक रूप से प्रार्थना सभा में लेना, उन्हें सम्मान देना, उनकी प्रशंसा करना जैसे कई कार्य किए गए जिनके बहुत ही सकारात्मक परिणाम सामने आए और छात्र-अनुपस्थिति की समस्या का निवारण भी बहुत सीमा तक हुआ।

''Acrtive- fassive करने नहीं आते सरजी; बहुत डर लगता है। एक नियम याद करो तो दूसरा भूल जाते हैं।'' अरे! ऐसी बात तो बिल्कुल भी नहीं है; बहुत सरल हैं Acrtive- fassive तो। बस 06 step याद रखने हैं - और हो गए Active - passive अध्यापन की सफलता का मुख्यतम सूत्र है - कठिनतम लगने वाली विषयवस्तु का सरलतम प्रस्तुतीकरण और न केवल सरलतम प्रस्तुतीकरण बल्कि बारबार ''यह तो बहुत सरल है'', ''इससे आसान क्या हो सकता है'', 'इसे तो हम पलक झपकते ही हल कर लेंगे' आदि कहना ताकि बच्चों के मन में यह बात बैठ जाए कि पढ़ाई जाने वाली विषयवस्तु सरल है और जिस दिन ऐसा हो जाएगा, विषयवस्तु स्वत: ही सरल एवं बोधगम्य हो जाएगी। कहा भी है - ''यद् भावं तद् भवति।''

प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक कक्षाएँ भावी नागरिक तैयार करने की आधारशिला है। इन कक्षाओं में उच्च अधिगम सम्प्राप्ति के मुख्य सूत्र हैं- सुन्दर लिखावट और उच्च स्मरणशक्ति। ''हमें सब कुछ नहीं लिखना है लेकिन जितना लिखना है वह सुन्दर लिखना है।'' सुन्दर लिखावट मस्तिष्क को सुनियोजित, केन्द्रित और सौंदर्यभाव से परिचित करवाने का प्रशिक्षण है। शिक्षक स्वयं सुन्दर लिखें और शुद्ध लिखें तो विद्यार्थी भी सुन्दर और शुद्ध लिखावट में पारंगत होंगे ही। उच्च स्मरण शक्ति, उच्च आत्मविश्वास का आधार होती है। बच्चे विषयवस्तु को भलीभाँति समझ लें फिर उसका बारंगार अनुशीलन करें तो मस्तिष्क को 'चीजों को याद रखने का प्रशिक्षण' मिलेगा। ज्ञान के स्थायित्व के लिए स्मृति-तन्तुओं का पुष्ट होना परम आवश्यक है। आज पढ़ाए गए पाठ के मुख्य बिंदुओं पर आधारित प्रश्नों को कई दिनों तक पूछा जाना मस्तिष्क का व्यायाम ही तो है इससे स्मरणशक्ति का विकास होता ही है।

''य:आचरणेन शिक्षयति स: आचार्य:।'' पुस्तकीय ज्ञान आवश्यक है परन्तु विचारों में सदाशयता और व्यवहार में विनम्रता परमावश्यक हैं। ये ही तो साध्य हैं। और छात्र के जीवन में इसकी सृष्टि तो एक सद्‌विचारी और सदाचारी शिक्षक ही कर सकता है। और हाँ, सुधार के लिए इच्छा और सत्य-संकल्प से सब कुछ संभव है। अखंड आनंद ❑

सीखने का आनंद (बच्चों के साथ मेरे प्रयोग)

हंसराज तंवर
अध्यापक,
महात्मा गांधी रा. वि.बनेठा,
ब्लाक उनियारा, जिला
टोंक (राज.)

मैं प्राथमिक कक्षाओं को पढ़ाने वाला शिक्षक हूँ। मुझे बच्चों को वर्णों की पहचान व उनकी आकृतियाँ बनवाने में बड़ी चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा था। ऐसे में मैंने सभी बच्चों को एक दिन चित्र बनाने के लिए कहा। सभी बच्चों ने अपने-अपने मन से अलग-अलग चित्र बनाए। किसी ने पेड़, चूहा, पतंग, तिरंगा झंडा, चूल्हा, बाल्टी, केला, बैगन, गिलास, कप, फूल, आम का चित्र बनाया। इसके बाद मैंने बच्चों से उन चित्रों पर खूब सारी बात करना शुरू किया।

बच्चे बातचीत में बहुत रुचि ले रहे थे। मैंने उनको चित्र के रंग, उपयोग, गुण व विशेषता पर खूब सारी बात की। कुछ बच्चों के चित्र स्पष्ट नहीं बने थे। मैंने उन चित्रों को लेकर बच्चों से कई तरह की बातचीत की जैसे यह आपने क्या बनाया है? यह क्या काम आता है? तुमने इसको कहाँ देखा है आदि प्रश्नों से मैंने जाना कि यह आड़ी तिरछी दिखने वाली रेखाएँ, छोटे-बड़े गोल, चपटे गोले, चाहे मेरे लिए कुछ मायने नही रखते हों पर बच्चों के लिए उन चित्रों में लोहे का चक्कर था, गाय की पूंछ थी, भैस का सींग था, दादी का चश्मा वगैरहा वगैरहा चीजें थीं। बच्चों के उत्तरों से मुझे भी बड़ा आनंद आया। मेरा भी सीखना हुआ। मैंने बच्चों को शाबाशी दी। उनको और नये नये चित्र बनाने के लिए प्रोत्साहित किया। मैंने चित्रों के माध्यम से बच्चों की कल्पना शक्ति, मन के विचार जानने के लिए मैंने बच्चों से पूछा-केले का रंग कौनसा होता है? सब बच्चों ने पीला बताया पर एक बच्ची ने सफेद बताया। मैंने उससे इसका कारण जानना चाहा तो वह बोली सर पीला तो छिलका होता है अंदर केला तो सफेद ही होता है। कच्चे केले के छिलके का रंग हरा होता है। इसी प्रकार मैंने कहा बच्चों सभी जीवों को जिंदा रहने के लिए पानी की आवश्यकता होती है। जल ही जीवन है। इस पर एक बच्चे ने कहा सर आपने चींटे को पानी पीते देखा है क्या? मैंने तो कभी नहीं देखा पर वह भी जिंदा रहता है। इसी प्रकार मैं बीज उपचार के बारे में बातचीत कर रहा था और बच्चों को हल्के व खराब बीज को पानी में डालने से वह तैरने लगते हैं, साथ ही अच्छे व ठोस बढ़िया बीज पानी में नीचे बैठ जाते हैं। इस पर एक बच्चा कहता है, सर हमारे गाँव में मिर्च होती है उसके बीज तो सारे ही पानी मैं तैरते हैं पर वह खराब नहीं होते हैं। बच्चों के इस तरह के सवाल जवाबों से मुझे बहुत अच्छा लगा, क्योंकि बच्चे कक्षा कक्ष की बातचीत को अपने अनुभवों से जोड़ कर समझने का प्रयास कर रहे थे। इस जुड़ाव की प्रक्रिया में वह सवाल जवाब भी कर रहे थे। मैं इन सबको बच्चों का सीखना ही मानता हूँ। सीखने की यह प्रक्रिया बहुत ही सहज व आंनददायी भी बच्चों के लिए रहती है। ऐसा मेरा मानना है। इस तरह कार्य करने से बच्चों में अपनी बात कहने का हौसला, आत्मविश्वास पैदा हुआ। मौखिक अभिव्यक्ति के अवसर मिले। इस प्रक्रिया में वह बच्चे भी शामिल हो गए जो कक्षा शिक्षण के दौरान ज्यादा समय चुपचाप ही रहते थे। बातचीत में उनकी भी सहभागिता बढ़ी।

बच्चों द्वारा चित्रों पर खुली चर्चा करने से मैं बड़ा खुश था क्योंकि मैं जानता

था कि यह सब काम बच्चों को पढ़ना-लिखना सीखने में मेरी मदद करने वाला होगा। चित्र पर चर्चा के बाद मैंने उन चित्रों के नाम लिखकर बच्चों से वर्ण/अक्षर की पहचान करवाई तो बच्चे आनंद के साथ पहचान करने लगे। इस तरह कार्य करने से बच्चों ने कम समय में ही अधिक अक्षरों की पहचान करना सीख लिया। मैंने बच्चों से उनके परिवेश में, उन्होंने जो चीजें देखी हैं, उनके नाम एक एक करके बताने को कहा तो बच्चे बोले सर कांदा (प्याज) भाटा (पत्थर) ऊंदरा (चूहा) छाछ, दूध, गाय, मग्गा (जग)आदि नाम बताए। मैं सभी नामों को ब्लेक बोर्ड पर लिखता गया। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि अभी तक जो बच्चे वर्णमाला के सभी अक्षरों/मात्राओं से परिचित नहीं थे पर उन्होंने बोर्ड पर लिखे नामों को पढ़ लिया। फिर मैंने उन नामों में से वर्ण को अलग किया। उनकी ध्वनि की पहचान बोल कर करवाई। फिर उस अक्षर को लिखना सिखाया। जब बच्चे आठ दस वर्ण पहचानने लगे तो मैंने बच्चों से वर्णों को मिलाकर बोलने का खूब मौखिक अभ्यास करवाया। मैं ध्वनियों को अलग- अलग बोलता बच्चे उनको मिलाकर बोलते। इस प्रकार मेरा यह क्रम लगातार चलता रहा। इस प्रक्रिया से बच्चे तीन चार माह में ही पढ़ना लिखना सीख गए।

फिर मैंने बच्चों को समान ध्वनि वाले, प्रथम अक्षर की ध्वनि वाले, अंतिम अक्षर की ध्वनि वाले शब्दों का मौखिक व लिखित अभ्यास करवाया।

अब मुझे बच्चों में पढ़ने के लिए आत्मविश्वास जगाना जरूरी लगा। इसके लिए मैंने कुछ परिवेश की वस्तुओं के नाम बच्चों से पुछ-पुछ कर ब्लैक बोर्ड पर लिखकर उनसे भी स्वर, व्यंजन, मात्रा की पहचान करवाई। बच्चों से तुक वाले शब्द भी बुलवाये। इस प्रक्रिया में बच्चों के साथ-साथ मुझे भी आनंद आने लगा। साथ ही बच्चे भी बड़ी सहजता के साथ सीख रहे थे। फिर मैंने चित्रों पर तीन चार वाक्य लिखवाना शुरू किया।

बच्चों ने शुरुआत में दो-दो शब्दों के छोटे-छोटे वाक्य ही लिखे। पर लगातार मेरे द्वारा इसी तरह का कार्य करवाने से बच्चे बाद में चार-पाँच वाक्य भी लिखने लगे। शुरुवाती समय में मैंने बच्चों की मात्रा संबंधी गलतियों को नजरअंदाज किया क्योंकि बच्चों को लिखने का आनंद आए, इस समय मेरा यही उद्देश्य था। बच्चे अपने मन से लिखने लगे, अपने मौलिक विचार प्रकट भी करने लगे। मैंने मेरे काम को थोड़ा और आगे बढ़ाने के लिए बच्चों से छोटी-छोटी कविताओं को आगे बढ़ाने का कार्य शुरू करवाया, अधूरी कहानियों को पूरा करवाने का काम शुरू किया। इस तरह के कार्यों में बच्चों का उत्साह देखकर मुझे बड़ा संतोष मिलता। क्योंकि उत्साह ही सीखने के लिए प्रेरित करता है। ऐसा मेरा मानना है। कक्षा में पुस्तक पढ़ाते समय बच्चे ज्यादा आनंदित नहीं होते थे।

इसलिए मैंने मेरे काम के तरीके को बदलकर कक्षा 3, 4, 5 के बच्चों को? लिखना-पढ़ना सिखाया। इस प्रक्रिया से बच्चों ने सारे स्वर, व्यंजन, मात्राएँ नहीं पढ़ी, उससे पहले ही पढ़ना-लिखना सीख लिया। बाद में विद्यालय में मनाए जाने वाले उत्सव/ पर्व का प्रतिवेदन भी बच्चे ही लिखने लगे।

बच्चों को निरंतर पढ़ने, स्वाध्याय करने के ज्यादा से ज्यादा अवसर कैसे उपलब्ध हो? मैं इसके बारे में सोचने लगा। मैंने विद्यालय में स्थित पुस्तकालय में से छोटे बच्चों के लिए उपयोगी कहानियों की पुस्तकें लेकर बच्चों को रोज कक्षा में एक कहानी सुनाने लगा। गडरिया की कहानी, लालची कुत्ता, मेरी गुड़िया, चिड़िया और चूहा, दो बैल, बूढ़ी काकी, इंसाफ, ईमानदार बच्चा आदि। बच्चों को कहानियाँ सुनाने के पीछे मेरा उद्देश्य बच्चों में पुस्तकें पढ़ने की जिज्ञासा पैदा करना था। मैं बहुत हद तक इस उद्देश्य में सफल भी हुआ। बच्चे मुझसे पुस्तकें पढ़ने के लिए माँगने लगे। मुझे अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन पुस्तकालय के बारे में जानकारी थी। मैं एलआरसी पर गया। मेरी आवश्यकता एल आर सी के संदर्भ्य व्यक्ति को बताई। वहाँ से मुझे कुछ बच्चों की पत्रिकाएँ चंपक, नंदन, सत्य कथा इत्यादि प्राप्त हुई।

साथ ही उन्होंने मुझे थैला पुस्तकालय के बारे में भी बताया। पाँच थैलों में अलग-अलग 25 पुस्तकों के सेट थे। एल आर सी पर कार्यरत संदर्भ व्यक्तियों ने मुझे बताया कि आप बच्चों को यह पुस्तकें पढ़ने के लिए दे सकते हैं।

आप जितने दिन भी काम करना चाहें, उतने दिन इनको अपने पास रख सकते हैं। साथ ही आप बारी-बारी से थैलों को बदलकर सभी पुस्तकों का उपयोग बच्चों के लिए कर सकते है। मैं थैला लेकर बड़ा खुश और उत्साही था। मैंने इस झोला पुस्तकालय की पुस्तकों को बच्चों को स्वतंत्र रूप से पढ़ना सिखाने हेतु बच्चों की पहुँच में मैंने कक्षाकक्ष में रख दिया। बच्चे इनको उलट पलट कर देखते, इनके चित्रों को देख-देख कर बच्चे अनुमान लगाकर पढ़ने लगे थे। पुस्तक में बिल्ली और चूहे के चित्र के नीचे लिखा था 'बिल्ली को देखकर चूहे डर गए' बच्चे ने इसको पढ़ा बिल्ली को देखकर चूहा भाग गया। इसी तरह 'फलों की टोकरी' को बच्चे ने पढ़ा फलों से भरी एक टोकरी। इस तरह बच्चे नई नई पुस्तकों से अपनी पढ़ने की भूख को तृप्त करके, बहुत कुछ सीख रहे थे। बच्चों के साथ कहानी व छोटी-छोटी कविताओं पर मैं काम करने लगा। पहले मैं बच्चों को पूरी कहानी हाव-भाव के साथ सुनाता। कहानी के बीच में बच्चों को जोड़े रखने के लिए व कल्पना शक्ति के विकास हेतु कुछ प्रश्न भी करता। कहानी पूरी होने के बाद बच्चों को पढ़ने के लिए किताबें देता। बच्चे कहानी की किताबें जब तक पढ़ते, तब तक मैं कहानी लिखे चार्ट को कक्षा-कक्ष

में बच्चों की पहुँच की दीवार पर चिपका देता।

जब बच्चे कहानी को पढ़ लेते। फिर मैं चार्ट पर उंगुली रखते हुए कहानी पठन करवाता था। बच्चों को मौखिक कहानी कहने का अवसर देता। कुछ बच्चे नहीं बोलते, उनको छोटे समूह में अपने शब्दों में कहानी कहने के लिए प्रोत्साहित करता। यह सारा काम करने के बाद कहानी को अपने शब्दों में कॉपी में लिखवाता था। कहानियों के माध्यम से बच्चों में कई तरह की क्षमताओं का विकास होता मुझे परिलक्षित होता दिख रहा था। जैसे 1- दूसरों की बात को ध्यान से सुनना (सुनकर समझना)। 2- अपनी बारी आने पर ही बात करना(धैर्य)। 3- सुनी हुई बात में से प्रश्न बनाना(प्रश्न बनाना)। 4- कहानी के पात्रों के स्थान पर खुद को रख कर, अपने मन के विचार कहना(स्वयं निर्णय लेना)। 5-कहानी की शिक्षा स्वयं ही तय करना(कल्पना शक्ति विकास) 6- कहानी को आगे बढ़ाना(सृजनशीलता)। 7- कहानी के पात्रों के अनुरूप हाव-भाव करना (अभिनय कला का विकास) आदि। इन सबके परिणामस्वरूप बच्चे विद्यालय में आयोजित होने वाले वार्षिक उत्सव, पर्व, जयंतियों, बाल सभा आदि कार्यक्रमों में अपनी भागीदारी भी करने लगे थे।

इन कार्यक्रमों में उनके अभिभावक, शिक्षक जब आते और छोटे-छोटे बच्चों के मुँह से कहानी, गीत, कविता सुनते तो उनको बहुत अच्छा लगता। छोटे बच्चों के काम को देखकर कक्षा 6, 7, 8 के बच्चे भी मेरे पास पुस्तकें पढ़ने के लिए माँगने आने लगे थे। सात-आठ दिनों में जब बच्चे पुस्तकें पढ़कर वापस लाते, तो मैं उनको पुस्तक में क्या-क्या पढ़ा? क्या-क्या अच्छा लगा? उनके अनुभव प्रार्थना सभा में सब बच्चों को सुनवाता।

उनको पुस्तक की कोई कहानी याद होती,तो उसको भी सब बच्चों को सुनवाता। इस तरह की गतिविधियों से बच्चों में आत्मविश्वास पैदा होने लगा। बच्चों में बोलने की झिझक, संकोच खत्म हुआ। इसी प्रकार मैंने छोटे बच्चों से कहानी को आगे बढ़ाने, अधूरी कहानी को पूरा करने, कविता को आगे बढ़ाना आदि कार्य भी कक्षा कक्ष में बच्चों के साथ शुरू किए। मैं बच्चों से चुनिंदा शब्द लेकर उनसे कहानी बनाने का काम भी करवाता था। कहानी की तरह बच्चे कविता भी लिखने लगे कुछ उदाहरण हैं-

आम

आम कितना सुंदर है।
आम पीला होता है।
आम का जूस मिलता है।
आम को सब खाते,
आम मीठा होता।

गाड़ी आई

छुक-छुक कर गाड़ी आई,
आगे से हट जाना भाई।
काला काला धुआँ उड़ाती,
छुक-छुक करके शोर मचाती,
गाड़ी आई गाड़ी आई।

कोयल रानी

कोयल रानी आओ ना,
अपना गीत सुनाओ ना।

बच्चों को निरंतर पढ़ने, स्वाध्याय करने के ज्यादा से ज्यादा अवसर कैसे उपलब्ध हो? मैं इसके बारे में सोचने लगा। मैंने विद्यालय में स्थित पुस्तकालय में से छोटे बच्चों के लिए उपयोगी कहानियों की पुस्तकें लेकर बच्चों को रोज कक्षा में एक कहानी सुनाने लगा। गडरिया की कहानी, लालची कुत्ता, मेरी गुड़िया, चिड़िया और चूहा, दो बैल, बूढ़ी काकी, इंसाफ, ईमानदार बच्चा आदि। बच्चों को कहानियाँ सुनाने के पीछे मेरा उद्देश्य बच्चों में पुस्तकें पढ़ने की जिज्ञासा पैदा करना था। मैं बहुत हद तक इस उद्देश्य में सफल भी हुआ।

सबके मन को भाती है,
डाल-डाल पर गाती है।
फूलों को वह खाती है,
हरियाली में आती है।
दीपावली पर जाती है,
अच्छे गीत सुनाती है।
बगिया में पाती है,
अच्छे पेड़ पर बैठती।

बच्चों की तुकबंदी मेरे लिए प्रेरणा का कार्य कर रही थी। कुछ बच्चों ने चित्र बनाकर उस पर अपने विचार भी तीन-चार वाक्यों में लिखना शुरू कर दिया था। एक लड़के ने लड़की का चित्र बनाकर उसमें रंग भरकर लिखा है।

यह लड़की है।
यह लड़की अच्छी है।
यह लड़की पढ़ने आती है।
लड़की को पढ़ना अच्छा
लगता है।

इसी प्रकार दूसरे बच्चे ने पेड़ का चित्र बनाकर उसमें रंग भरकर लिखा है।

यह आम का पेड़ है।
पेड़ हमें छाया देते है।
पेड़ो से हमे हुवा मिलती है।

इस तरह बच्चों के काम को देखकर मेरी भी रोज कुछ न कुछ लर्निंग हो रही थी। जब इस तरह स्कूल में मुझे शिक्षण का काम करवाते हुए अभिभावकों ने देखा तो उन्होंने भी बहुत सहराया। अभिभावक मेरे काम के लिए कहते थे 'यो मास्टर जबरो है भाई, बच्चा न सीखाबा वास्त ? न्यारो न्यारो काम कराव छः। (यह शिक्षक जोरदार है,बच्चों को सीखने हेतु अलग-अलग तरीकों से काम करवाता है।)

उनके यह शब्द मुझे शक्कर से भी ज्यादा मीठे लगते थे और मेरे लिए किसी बड़े पुरस्कार से कम नहीं थे। अभिभावकों की प्रेरणा से मैं लगातार मेरे शिक्षण कार्य के तरीकों में बदलाव करता रहा। मैं शिक्षा में नवाचारों का पक्षधर हूँ। अब मेरा परंपरागत शिक्षण के तरीके के बजाय संदर्भ पद्धति से शिक्षण करवाने में विश्वास है।

क्योंकि बच्चों के उत्साह व सीखने के कारण मेरा संदर्भ पद्धति से काम करने में दिनों दिन विश्वास पक्का होता जा रहा है।

बच्चे स्वभाव से ही चंचल होते हैं। उनको एक ही तरह का काम ज्यादा देर तक करने में, एक ही जगह ज्यादा देर बैठे रहने में, चुपचाप रहने में, ज्यादा देर तक सुनने में, ऊबाऊ महसूस होता है।

इसके विपरीत इन सब कामों में शिक्षक को यदि, बच्चों का मन लगाना है तो उसे पहले यह जानना होगा कि बच्चों को आनंद कौन से कार्यों में आता है। इसके लिए शिक्षक को बच्चों की सर्जनशीलता के गुण को काम में लेना होगा। बच्चों को नए-नए चित्र बनाने, मिट्टी व कागज के खिलौने बनाने, गुपचुप बातें करने, कहानी सुनने, लिखने, खेल खेलने, लकड़ी के टुकड़ों से आकृतियाँ बनाने, प्ले कार्ड को देखकर चित्र पठन, वर्ण पठन, शब्द पठन, कंकरों, पत्थरों, कंचों से खेलने में, कपड़े से गुड्डा-गुड्डी बनाने में, चित्रों में रंग भरने में, सजावट करने में, मंजीरे बजाने में, गाना गाने में, बाजा बजाने में, नाचने में, स्लेट पर गोले बनाने में, स्लेट पेंसिल से स्लेट पर खेलने में, काँच में मुँह देखने में, पक्षियों-पशुओं की कहानियाँ सुनने आदि कार्यों में बहुत आनंद आता है।

आनंद आने से उनकी रुचि व जिज्ञासा बढ़ती है। जो शिक्षक बच्चों में जिज्ञासा, रुचि पैदा करने में सफल हो जाता है वही बच्चों को सरलता से आनंद के साथ सिखा सकता है। रुचि से किया गया कार्य आनंददायी व सरल हो जाता है। इन सब कार्यों को करके शिक्षक बच्चों की नैसर्गिक प्रतिभा का विकास भी करता है। उनके निखार हेतु, वातावरण प्रदान करता है। बच्चों को खूब सारे अवसर देता है। उनको गलतियों से सीखने के मौके उपलब्ध करवाता है। लगातार इस तरह के रचनात्मक कार्य करते रहने से, बच्चे भविष्य में पत्रकार, अच्छा चित्रकार, अच्छा खिलाड़ी, कुशल वक्ता, अच्छा संगीतकार, अच्छा नर्तक आदि के रूप में सामने आते हैं।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी ने भी बुनियादी शिक्षा के लिए जो बात आवश्यक मानी थी? वह भी सृजनात्मकता से ही जुड़ी हुई थी। वे कहते थे कि विद्या मंदिरों में जब तक बच्चों को हाथ, मन और मस्तिष्क तीनों से होने वाले कार्य नहीं करवाए जाएंगे, तब तक शिक्षा से बच्चे केवल साक्षर ही बनेंगे।

बच्चों में जीवन मूल्यों का विकास तो तब ही होगा जब उनको अधिक से अधिक रचनात्मकता, सृजनात्मकता के काम करवाये जायेंगे।

इन रुचिपूर्ण कामों को करने से बच्चों में कई सारे जीवन मूल्य कब विकसित हो जाते हैं, हमें पता ही नहीं लगता। जैसे एक दूसरे का सहयोग करने, अपनी बारी का इंतजार करना, नेतृत्व करना निर्णय लेना, तर्कपूर्ण बात, प्रश्न पूछना, आत्मविश्वास, संवेदनशीलता, सबका आदर व सम्मान करना, सबके साथ शांति से रहना, सबको बराबर समझना, सबके साथ न्याय पूर्ण व्यवहार करना आदि की शिक्षा मिलती है।

इन मूल्यों को नहीं पाने वाले विद्यार्थी महज अंक व डिग्री प्राप्त करने वाली मशीन बन कर रह जाते हैं। समाज में नया बदलाव नहीं कर सकते हैं। वे केवल नौकरी पाकर अपना गुजारा कर सकते हैं। उनमें सामाजिकता का पूर्ण अभाव रहता है? हम सब देख भी रहे हैं। हमारे देश में करोड़ों की संख्या में शिक्षित है। और आपको ताज्जुब होगा कि अपराध करने वालों की लिस्ट देखेंगे तो, उनमें भी उच्च शिक्षा प्राप्त, बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ लेने वाले ही शामिल पाए जाते हैं। इसका मतलब क्या हुआ? उन्होंने केवल नौकरी पाने के लिए पढ़ा था। जब नौकरी नहीं मिली तो वे सामाजिक नहीं हो पाये। बल्कि समाज के लिए समाज कंटक बन गए। जब तक बच्चों में मानवीय मूल्यों का विकास नहीं होगा, हमारी शिक्षा अधूरी ही मानी जाएगी। इसलिए एक शिक्षक को ज्यादा से ज्यादा सृजनशीलता का काम खुद बच्चों को करने के ज्यादा से ज्यादा अवसर देने चाहिए।

शिक्षक तो केवल उनके मार्गदर्शक ही बन सकते हैं। उनको सोचने दें, जूझने दें, विचार करने दें, आपस में संवाद करने दें। इस प्रकार करने से बच्चों का मानसिक व बौद्धिक विकास खूब होगा। इन कामों से हमारे बच्चे क्या, क्यों और कैसे सोचना शुरू करेंगे। जब यह सब होने लगेगा तो फिर बच्चे निरन्तर भाषायी कौशल और सीखने के अधिगम की दृष्टि से श्रेष्ठ प्रदर्शन कर सकेंगे। ❑

प्राथमिक कक्षाओं में गणित शिक्षण की विधियाँ

महेन्द्र कुमार गुप्ता
प्रधानाचार्य,
रा.उ.मा.वि. सरस्वती कुण्ड,
जयपुर (राज.)

राष्ट्रीय विकास के समग्र कार्यक्रम में शिक्षा की महती भूमिका है, इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षा की वर्तमान प्रणाली में जो परिवर्तन आवश्यक हैं, उन्हें हम पहचाने और उनके आधार पर शिक्षा के विकास के कार्यक्रम तैयार करें। विद्यालयी स्तर से प्रारंभ की जाने वाली शिक्षा में विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास के लिए हमारे पाठ्यक्रम में भाषा, गणित, पर्यावरण के साथ-साथ सहशैक्षिक गतिविधियों का संचालन किया जाता है। इनमें गणित एक ऐसा विषय है जो न केवल हमारे दैनिक जीवन में महत्त्वपूर्ण है बल्कि अन्य विषयों के सीखने में भी आवश्यक है।

गणित के सम्बन्ध में अभी तक 'क्या' तथा 'क्यों' पर ही विचार किया गया है, इसे कैसे पढ़ाया सिखाया जाए ? यह अभी भी अध्यापकों के लिए कठिन समस्या बनी हुई है। गणित का ज्ञान 'बच्चों को कैसे देना है?' बालकों को 'गणित किस प्रकार सिखाना है'? इस प्रकार के अनेक प्रश्नों के जवाब के लिए हमें शिक्षण-विधि को समझना होगा।

दरअसल शिक्षण कार्य को सम्पन्न करने के लिए ज्ञान के भण्डार को छात्रों के मस्तिष्क में स्थानान्तरण करने की पूर्ण प्रक्रिया विधि (Method) कहलाती है। दूसरे शब्दों में शिक्षण विधि, शिक्षण का एक माध्यम (साधन) है, जिसके द्वारा अध्यापक अपने पाठ को रोचक, सजीव एवं प्रभावशाली बनाता है। यह शिक्षक द्वारा संचालित वह क्रिया है जिससे छात्रों के ज्ञान की प्रगति होती है। जॉन डीवी के अनुसार शिक्षण पद्धति वह तरीका है जिसके द्वारा हम पठन सामग्री को व्यवस्थित करके, निष्कर्षों को प्राप्त करते हैं। विधि के द्वारा किसी लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव है। उसे प्रभावशाली बनाने के लिए विषय-वस्तु की प्रकृति को भी ध्यान में रखना पड़ता है और इसलिए अनेक विधियों का प्रतिपादन हुआ है। अत: मनोविज्ञान के सिद्धान्तों का प्रयोग कर शिक्षण के सूत्रों, युक्तियों आदि का प्रयोग कर अनुसन्धान के आधार पर अनेक शिक्षण विधियों को गणित में प्रयोग किया गया है।

शिक्षण अथवा अध्यापन विधियों का शिक्षा के उद्देश्यों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। शिक्षण-विधियों का उद्देश्य केवल बालकों को कुछ बातों का ज्ञान प्रदान करना ही नहीं, बल्कि अध्यापक और बालकों के पारस्परिक सम्बन्धों में सजीवता लाना है। शिक्षण-विधियाँ बालकों के मस्तिष्क के साथ-साथ उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व, बुद्धि, भावना, मूल्यों और मनोवृत्तियों पर भी प्रतिक्रिया करती है। जो शिक्षण-विधि मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण से उपयुक्त होती हैं, वे ही बालकों के व्यक्तित्व के समस्त गुणों का विकास करने में सहायक होती हैं। अत: विधियों का चुनाव करते समय अध्यापक को गणित विषय के उद्देश्यों को सदैव ध्यान में रखना चाहिए।

पिछले कुछ वर्षों में हमारे विद्यालयों में कक्षा अध्यापन को अनुप्राणित करने की विधियों पर ध्यान दिया गया है। माध्यमिक शिक्षा आयोग ने अपनी रिपोर्ट में गतिशील शिक्षण पद्धतियों के महत्त्व एवं उपयोग पर विस्तार से प्रकाश डाला है। प्रभावी शिक्षण

पद्धतियों के बारे में पिछले कुछ दशकों में हमारे देश में डीपीईपी, सर्वशिक्षा अभियान, राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान, समग्र शिक्षा आदि के माध्यम से विभिन्न स्तरों पर अनेक प्रशिक्षण, वर्कशाप, पुनश्चर्या पाठ्यक्रम होती रही है किंतु अधिकांश शिक्षकों द्वारा कक्षा-कक्षों में गणित शिक्षण के परम्परागत तरीके अपनाये जा रहे हैं।

प्राथमिक स्तर पर गणित शिक्षण का उद्देश्य -शीघ्रता एवं शुद्धता से गणना, गणित का दैनिक जीवन में उपयोग तार्किक शक्ति का विकास, भाषा को आकृतियों में रूपान्तरण एवं विलोम, अनुमान लगाना आदि है। गणित के उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए अध्यापक का यह दायित्व है कि वह गणित का शिक्षण इस विधि से करे जिससे छात्रों में इस विषय के प्रति रुचि उत्पन्न हो। आज का छात्र गणित विषय में प्राथमिक स्तर से ही घबराता है उसके मन में एक प्रकार का डर बैठ जाता है जिसका परिणाम यह होता है कि प्राथमिक स्तर से उच्च माध्यमिक स्तर तक इस विषय में छात्र अधिक असफल होते हैं। प्रायः आम अभिभावक एवं विद्यार्थी गणित को एक कठिन विषय मानते हैं किंतु वास्तव में ऐसा नहीं है। अनुपयुक्त अध्यापन विधियों के कारण ही गणित छात्रों को एक कठिन विषय लगता है तथा गणित से भय लगने लगता है। प्रभावी विधि के प्रयोग से छात्र गणित में रुचि लेते हैं तथा कक्षा में उनको यह विषय भयभीत नहीं करता। इसे सरल बनाना शिक्षक की मानसिकता एवं उसके शिक्षण पर निर्भर है। गणित विषय को कक्षा में रुचिकर बनाने के लिए विशेष प्रयासों की आवश्यकता है। प्रभावी अध्यापन विधि पर ही कक्षा में अध्यापक की सफलता निर्भर करती है। ऐसा देखा गया है कि अनेक परिश्रमी गणित के अध्यापकों को कक्षा में उपयुक्त अध्यापन विधि के अभाव में, सफलता नहीं मिलती। गणित के अध्यापक के लिए गणित की विभिन्न विधियों का ज्ञान आवश्यक है अन्यथा वह कक्षा में उद्देश्यों को प्राप्त करने में विफल रहेगा।

गणित विषय से विद्यार्थियों के डरने का एक कारण यह भी है कि अधिकांशतः शिक्षक बिना अवधारणा स्पष्ट किए विद्यार्थियों को सबसे पहले गणित के सभी सूत्र कण्ठस्थ करा देते हैं तत्पश्चात् उन सूत्रों का प्रयोग कराके गणित के प्रश्न हल कराते हैं। इस रटंत प्रणाली में यदि विद्यार्थी उनका प्रयोग करते समय सूत्र भूल गया तो पूरा प्रश्न ही छूट जाता है। इससे बच्चों को गणित में कम अंक आने एवं अभिभावकों की डांट के कारण गणित विषय से भय लगता है। बैलार्ड महोदय के अनुसार 'गणित की शिक्षा जो एक सुखदायक क्रिया होनी चाहिए थी, एक भयानक स्वप्न बन गई है।' कारण स्पष्ट है कि अध्यापक गणित के विषय को इस ढंग से प्रस्तुत नहीं करता है जिससे छात्रों में इस विषय के प्रति रुचि जागृत हो।

> गणित की अध्यापन विधि का चयन विषयवस्तु की आवश्यकता, छात्रों की क्षमता, अध्यापन के उद्देश्यों आदि पर निर्भर करता है। गणित के अध्यापक को अध्यापन विधि का चयन सतर्कता से करना चाहिए। भिन्न-भिन्न अध्यापन विधियों में मनोविज्ञान को एक महत्त्वपूर्ण आधार माना गया है। अध्यापन विधि के बारे में निर्णय पाठ्य-सामग्री तथा उद्देश्यों के संदर्भ में ही किया जाना चाहिए। किसी भी उप-विषय के अध्यापन के लिए कोई निश्चित विधि का प्रतिपादन नहीं किया जा सकता। वही विधि सबसे उत्तम है जिससे छात्र विषय को रुचि से सीखें तथा विषयवस्तु के प्रत्ययों आदि को भलीभांति समझें। अनुभव एवं चिंतन द्वारा अध्यापन विधियों का प्रभावी प्रयोग सम्भव है।

हमारी शिक्षण विधियाँ इस प्रकार की होनी चाहिए कि छात्र विषय में रुचि लें। इसलिए गणित के शिक्षण के लिए निम्न स्तरों पर भिन्न-भिन्न विषयों का प्रयोग करना आवश्यक है। प्राथमिक स्तर पर अंकगणित शिक्षण स्मृति आधारित होना चाहिए जिसका आधार पुनरावृत्ति होता है। स्मृति हेतु खण्ड से पूर्ण एवं लय विधि का प्रयोग हो जैसे - पहाड़े आदि याद कराने में। इसके अतिरिक्त मौखिक एवं लिखित अभ्यास कार्य नियमितता, सामूहिकता, आदि का अधिकाधिक प्रयोग करना चाहिए।

हम जानते हैं कि प्राथमिक स्तर पर यदि बच्चों को गणितीय अवधारणाएँ अच्छे से सिखा दी जाये तो उच्च कक्षाओं में बच्चों को गणित सीखने में कोई समस्या ही नहीं होगी। गणित को यांत्रिक रूप की बजाय व्यावहारिक रूप से सिखाना होगा। इस स्तर के बच्चों को खेल, खिलौने, कविता, गीत, चित्र, जादू, नकल आदि पसंद है। यदि शिक्षक अपने गणित शिक्षण में इन तत्त्वों को समाहित करले तो गणित शिक्षण रुचिकर एवं प्रभावशाली हो जायेगा।

खेल विधि - हमारे देश में बहुत पहले से गणित शिक्षण में खेलों का प्रयोग होता रहा है। पाँच-गोटी, गुल्ली-डंडा, सतोलिया, किर-किर काटा, चर-भर इत्यादि खेलों की यादें आपको आज तक ताजा होंगी। इन खेलों से आपका मनोरंजन तो हुआ है, लेकिन क्या ये खेल केवल मनोरंजन के लिए ही हैं ? यदि गहराई से विचार करें और अपने बचपन के अनुभवों को दोहराएँ तो याद आएगा कि इन खेलों को खेलते-खेलते ही गणित की कई अवधारणाओं को समझ लिया था अथवा खेल ही खेल में अनेक गणितीय अवधारणाओं से परिचित हो

गये होंगे। अत: इन खेलों का उद्देश्य मात्र मनोरंजन ही नहीं अपितु गणितीय अवधारणाओं को रुचिकर तरीके से समझने का अवसर देना भी रहा है।

प्राय: घर में माता-पिता और विद्यालय में अध्यापक बच्चों को खेलने से रोकते हैं। वे बच्चों को जबरदस्ती पढ़ने बिठाते हैं। किसी खेलते हुए बच्चे को खेलने से रोकें नहीं बल्कि उनके साथ खेले। साथ ही खेल में गणित की निहित अवधारणाओं की ओर बच्चों का ध्यान आकृष्ट करें फिर उन्हें समझाएँ। बच्चे स्वभाव से खेलों को पसन्द करते हैं अत: यदि बच्चों को खेलों द्वारा पढ़ाया जाए तो वे हँसते-हँसते पढ़ेंगे। खेलों द्वारा बच्चों का शारीरिक विकास के साथ-साथ मानसिक विकास भी होता है। हम इस अवसर का लाभ उठा सकते हैं। बच्चों के साथ खेल सकते हैं। इस प्रकार उनको स्थायी विचार बनाने में रोचक ढंग से सहायता पहुँचा सकते हैं। ऐसा करना उनके गणित सीखने को रोचक बनाना ही होगा।

गीत, कविता – बालक क्रियाशील होता है। उसे ताल और लय आकर्षित करते हैं, अभिनय रोचक लगते हैं। यदि क्रियागीतों द्वारा शिक्षक, संख्याओं तथा गणित की संक्रियाओं के ज्ञान को स्थायी करने का उपक्रम करता है, तो एक ओर उसका शिक्षण रुचिकर बनेगा और दूसरी ओर बालक की भागीदारी में सक्रियता बढ़ेगी। तब बालक गणित पढ़ने में रुचि लेगा जिससे उसे गणितीय संक्रियाओं को समझने में सरलता होगी और विद्यालय में बाँधे रखने में उसे यह बहुत प्रभावकारी होगा। आपको याद होगा कि पहले विद्यालयों में एक बच्चा लय के साथ पहाड़े बोलता था तथा शेष बच्चे उसी लय में दुहराते थे जिससे बच्चों को आसानी से पहाड़े याद हो जाते थे और उनको सवालों को हल करने के लिए शीघ्रता से गुणा भाग करने में मदद मिलती थी। उदाहरण के लिए एक क्रियागीत-बच्चों को दस तक की गिनती के अभ्यास के लिए –

एक बड़े राजा का बेटा,
दो दिन से खटिया पर लेटा,
तीन डाक्टर देखने आए,
चार शीशियां साथ में लाए,
पाँच-पाँच पुड़िया तुरत बनाई,
छः दिन तक यों चली दवाई,
चली दवाई, चली दवाई,
चली दवाई, चली दवाई
सात दोस्त तब मिलने आए,
आठ फूल वे साथ में लाए।
नौ दिन में कुछ ताकत आई,
तब दस ने मिल दौड़ लगाई।

ऑरीगेमी – यह एक ऐसी विधा है जिसमें कागज को बिना काटे केवल मोड कर विभिन्न खिलौने बनाये जाते हैं। बच्चों को कागज के खिलौने में नाव, हवाई जहाज, फूल, गेंद आदि बनाना बहुत पसंद है। प्राय: विद्यालयों में शिक्षक बच्चों को कागज फाड़ने के लिए डांटते रहते हैं। यदि शिक्षक स्वयं बच्चों को कागज के नये-नये खिलौने बनाना सिखाये और इसके साथ ही कागज में बनने वाली विभिन्न ज्यामितीय आकृतियों एवं उनके गुणों की जानकारी देता रहे तो बच्चे सहज में ही ज्यामितीय गणित सीख सकते हैं।

पहेलियाँ – बच्चों में चुनौतियों का सामना करने की प्रवृत्ति होती है। जब यह चुनौती किसी साधारण दिखाई देने वाली समस्या को हल करने की हो तब बच्चे तुरंत उसको हल करने का प्रयास शुरू कर देते हैं। ज्यों-ज्यों वे प्रयास करते हैं, चुनौती बढ़ती जाती है। अनेक प्रयास के उपरांत जब वह हल हो जाती है तो बच्चों की खुशी की सीमा नहीं रहती। जब तक समस्या हल नहीं होती तो बच्चे लगातार उसको सोचते रहते हैं और उनकी हल ज्ञात करने की जिज्ञासा बढ़ जाती है। अंकों की पहेलियाँ, तीलियों की पहेलियाँ, चित्र पहेलियाँ आदि से उनकी तर्कशक्ति विकास के साथ-साथ विषयवस्तु पुष्ट की जा सकती है।

मेरी लिखित पुस्तक तीलियों की दुनिया में ऐसी ढेरों तीलियों की पहेलियाँ एवं तीलियों के खेल हैं जो सहज में ही ज्यामितीय अवधारणाओं के साथ-साथ तर्कशक्ति भी विकसित करते हैं जो बच्चों के लिए प्रतियोगी परीक्षाओं में उपयोगी है।

अंकों के जादू – बच्चे प्रारम्भ से ही गणित में रुचि लेने लगे इसके लिए यह बहुत आवश्यक है कि उन्हें शुरू में ही संख्या एवं गणित की चारों मूलभूत संक्रियाओं को रोचक ढंग से पढ़ाया जाए। जादू एक ऐसी विधा है जिसमें छोटे से लेकर बड़ों तक सभी को आनंद आता है। हमारे देश में बच्चों में गणित की संक्रियाओं को मजबूत करने के लिए अंकों के जादू का प्रयोग किया जाता रहा है। उदाहरण के लिए तीन अंकों की एक संख्या लिखिए?

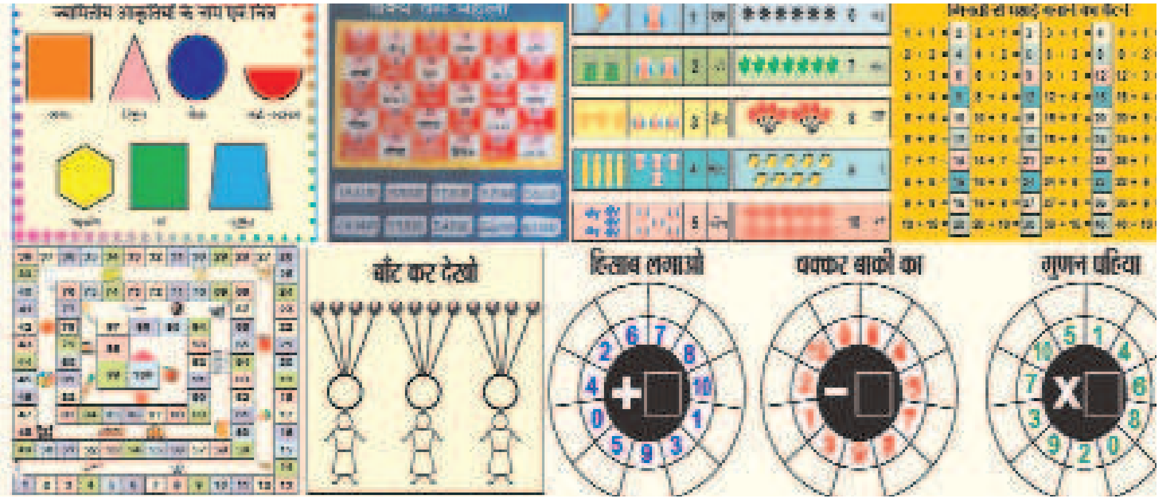

माना 386

सैकडे तथा इकाई के स्थान के अंक बदलिये 683

बड़ी संख्या में से छोटी संख्या घटाइये 683–386 = 297

पुन: सैकडे तथा इकाई के स्थान के अंक बदलिए 792

दोनों संख्याओं को जोड़िये 297+ 792 = 1089 आपका जोड़ सदैव 1089 आयेगा।

मेरी लिखित पुस्तक अंकों की दुनिया में ऐसे ढेरों अंकों के जादू एवं संख्याओं के खेल हैं जो सहज में ही अंकगणित की संक्रियाओं के साथ–साथ तर्कशक्ति भी विकसित करते हैं जो उनके लिये प्रतियोगी परीक्षाओं में उपयोगी है।

क्रियाविधि – बच्चो को मैदान में ले जाकर उनको वृत्त, त्रिभुज, आयत, वर्ग की आकृति में खड़ा करें। इससे बच्चे सहभागिता के साथ ज्यामितीय आकृतियों को समझेंगे और शिक्षक उनकी समझ को परोक्ष रूप से मूल्यांकन कर सकता है। बच्चों से क्ले अथवा मिट्टी के खिलौने बनाकर भी रोचक तरीके से ज्यामितीय आकृतियाँ एवं उनकी अवधारणा को स्पष्ट किया जा सकता है।

प्रयोग एवं प्रदर्शन विधि – हम जानते हैं कि बच्चे करके सीखते हैं अत: गणितीय अवधारणाओं की स्पष्टता के लिए शिक्षक को ठोस वस्तुएँ (मूर्त) काम मे लेनी चाहिए। प्रत्येक विद्यालय में गणित लैब हो जिसमें गणना मशीन (Calculator) फीते (Tapes), प्रपोर्शनल डिवाइडर समतल मापक (Level), स्लाइड रूल चाँदा, पैमाना, परकार टी स्क्वायर कम्प्यूटर, गणितज्ञों के चित्र एवं उपलब्धियाँ मनोरंजक पहेलियाँ, समय ज्ञान के लिए घड़ी, कैलेण्डर, ज्यामितीय आकृतियों एवं उपकरण का किट, एक मीटर बडा स्केल, इंच टेप फीता अबेकस गिनती पहाड़े का चार्ट, मोती माला, रस्सी, भार मापन हेतु तराजू बाट, द्रव तौल हेतु लीटर माप, माचिस की तीलियाँ, रबर बैण्ड, सिक्के एवं खिलौना नोट, जिओ बोर्ड ग्राफ पेपर, विभिन्न मापों के डिब्बे, पिन बोर्ड कंकड़, कार्डशीट बस / रेल्वे समय सारणी, बैंको के चैक, पानी/बिजली के बिल, दुकान का बिल, गेम्स बोर्ड, संख्या कार्ड, विभिन्न साइज के गेंदे, गणितीय मॉडल, चार्ट, आदि। अधिकांश विद्यालयों में राज्य सरकार द्वारा ABL किट दी गई है जिसका प्रयोग कर शिक्षक आनंददायी तरीके से गणित सिखा सकते हैं।

गणित की अध्यापन विधि का चयन विषयवस्तु की आवश्यकता, छात्रों की क्षमता, अध्यापन के उद्देश्यों आदि पर निर्भर करता है। गणित के अध्यापक को अध्यापन विधि का चयन सतर्कता से करना चाहिए। भिन्न–भिन्न अध्यापन विधियों में मनोविज्ञान को एक महत्त्वपूर्ण आधार माना गया है। अध्यापन विधि के बारे में निर्णय पाठ्य–सामग्री तथा उद्देश्यों के संदर्भ में ही किया जाना चाहिए। किसी भी उप–विषय के अध्यापन के लिए कोई निश्चित विधि का प्रतिपादन नहीं किया जा सकता। वही विधि सबसे उत्तम है जिससे छात्र विषय को रुचि से सीखें तथा विषयवस्तु के प्रत्ययों आदि को भलीभांति समझें। अनुभव एवं चिंतन द्वारा अध्यापन विधियों का प्रभावी प्रयोग सम्भव है।

वर्तमान समय में शिक्षा तकनीकी (Educational Technology) प्रयोग कर गणित को रुचिकर बनाया जा सकता है। विद्यालयों में टीवी, प्रोजेक्टर के माध्यम से गणित सिखाई जा सकती है। कक्षा में सभी स्तर के बालकों, जैसे– प्रतिभाशाली (Gifted), सामान्य (General) तथा पिछड़े हुए (late bloomer) उन सभी का ध्यान रखकर अध्यापन का कार्य पूर्ण करना चाहिए और वे विधियाँ अपनानी चाहिए जिनसे बच्चों तक ज्ञान पूर्ण रूप से स्थानान्तरित हो सके। ❑

शोध अध्ययनों द्वारा स्पष्ट हुआ है कि सहयोगी अधिगम की विधियाँ विभिन्न विषयों में और विभिन्न स्तरों (प्राथमिक स्तर से लेकर महाविद्यालय, विश्वविद्यालय स्तर तक) के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के लिए परंपरागत शिक्षण विधियाँ से सार्थक रूप से अधिक प्रभावी हैं। विद्यार्थियों के व्यवहार पर भी इन विधियों का धनात्मक प्रभाव पड़ता है और विद्यार्थियों की विद्यालय और विषयों के प्रति अभिवृत्ति पर भी इनका धनात्मक प्रभाव शोध अध्ययनों से में पाया गया है।

शिक्षा के वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सहयोगी अधिगम विधियाँ

डॉ. सुमन बाला
सह आचार्य,
हरिभाउ उपाध्याय महिला शिक्षक महाविद्यालय,
हटूंडी, अजमेर (राज.)

ऊँ सहनाववतु। सह नौ भुनक्तु।
सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै॥
ओउम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

(कठोपनिषद् के द्वितीय अध्याय की तृतीय बल्ली का 19 वाँ मन्त्र)

परमेश्वर (नौ) हम दोनों गुरु-शिष्यों की (सह) एक साथ (अवतु) रक्षा करे (नौ) हम दोनों का (सह) एक साथ (भुनक्तु) पालन करे, जिससे हम दोनों (वीर्यम्) ब्रह्मविद्या की प्राप्ति में आने वाली बाधाओं के सहने आदि रूप सामर्थ्य को (सह) एक साथ (करवावहै) सिद्ध करें (नौ) हम दोनों का (अधीतम्) पढ़ना, पढ़ाना (तेजस्वि) तेजयुक्त हो अर्थात् हमारी विद्या प्रभावशाली और विविध फलों से युक्त हो (मा विद्विषावहै) और पढ़ने-पढ़ाने वाले गुरु शिष्य परस्पर कभी द्वेष न करें।

शिक्षा में गुरु और शिष्यों के संबंधों को उद्धृत करने वाला और सहयोगी अधिगम को उद्घाटित करने वाला यह मंत्र प्राचीन भारतीय संस्कृति के हमारे ऋषियों के प्रजातांत्रिक चिंतन को इंगित करता है। परंतु समय के साथ हम अपने इस अनमोल विचार को भूल बैठे और उसके स्थान पर शिक्षा में ऐसे विचारों को स्थापित कर दिया जो न तो व्यक्ति हित में है और न ही समाज हित में। हमने शिक्षा के उद्देश्यों का संकुचित अर्थ लेकर उसी के अनुरूप शिक्षण प्रक्रिया और उसकी विधियो को अपना लिया जिसका नुकसान व्यक्ति और समाज दोनों को हो रहा है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुसार शिक्षा एक न्याय संगत और न्याय पूर्ण समाज के विकास के साथ समतामूलक समाज बनाने में योगदान करने में सक्षम बनाने के लिए तथा पूर्ण मानव क्षमता को प्राप्त करने के लिए है। समतामूलक समाज बनाने में योगदान देने वाली शिक्षा की प्रक्रिया इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे जुड़ा प्रत्येक व्यक्ति अपने सामर्थ्य के अनुसार समाज को बेहतर बनाने के लिए तैयार हो। वर्तमान में विद्यमान शिक्षा एवं शिक्षा की प्रक्रिया प्रत्येक बालक की पूर्ण क्षमता का विकास करने में सहायक नहीं कही जा सकती। इस शिक्षण प्रक्रिया का अवलोकन करने पर हम पाते हैं कि एक कक्षा के कुछ गिने-चुने बालक ही हमेशा आगे रहते हैं और शेष बालक बिछड़ते हुए धीरे-धीरे अपना आत्मविश्वास भी खोते चले जाते हैं जो उनकी पूर्ण क्षमता के प्रकटीकरण को संभव बना सकता है। विद्यालय की यही परिस्थितियाँ उसके समाज जीवन में भी घटित होती हैं। शिक्षा द्वारा बेहतर समाज के लिए तैयार होने वाला व्यक्ति अपनी क्षमता की पूर्णता को बिना प्राप्त किये ही जीवन जीए जाता है। इससे व्यक्ति की हानि होने के साथ समाज का भी बड़ा नुकसान है। जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को समाज की बेहतरी के लिए कार्यशील होना था वहीं अधिकांश अपनी क्षमताओं को बिना पहचाने और बिना विकसित किए ही रह जाते हैं। व्यक्ति की वह ऊर्जा और क्षमता जो समाज की बेहतरी के लिए कार्य करती, वह सही मार्ग न पाकर समाज के लिए नुकसानदायक बनने की ओर भी ले जा सकती है। ऐसी परिस्थितियाँ न बनने पाए इसके लिए चिंतन करने पर समाज की हमारी शिक्षा प्रक्रिया का विश्लेषण करना होगा।

प्राचीन काल की शिक्षण-अधिगम की सहयोगी प्रक्रिया ने धीरे-धीरे कब प्रतिस्पर्धात्मक प्रक्रिया का रूप ले लिया हम समझ ही नहीं पाए। सबको साथ-साथ सीखने, विकसित करने और तेजस्वी बनाने की उपनिषद की प्रार्थना के स्थान पर अन्य को पछाड़कर आगे आने की भावना को हम अपने बालकों के मस्तिष्क में बैठाते चले जा रहे हैं। कक्षा के शैक्षिक परिणाम में प्रथम, द्वितीय आदि स्थान पाने वाले विद्यार्थियों का अध्यापक पीठ ठोक कर उत्साह वर्धन करते हैं और न्यून परिणाम वाले विद्यार्थियों से उनका व्यवहार संतोषप्रद न होने के साथ-साथ मानवीय भी नहीं कहा जा सकता। बालक घर पर माता-पिता से भी इसी प्रकार के व्यवहार से रूबरू होता है। अच्छा परिणाम लाने के बावजूद भी कक्षा में प्रथम कौन रहा, यह प्रश्न बालक के सोचने की दिशा को परिवर्तित कर साथ-साथ सीखने के स्थान पर पछाड़कर आगे बढ़ने की भावना को पनपाने में सहायक होती है। अब इसके लिए उसका करणीय अथवा अकरणीय का भेद भी धीरे-धीरे समाप्त होने लगता है। शिक्षा के क्षेत्र में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा होनी चाहिए ऐसा हमने सुना और पढ़ा है। परंतु प्रतिस्पर्धा का उद्देश्य ही अन्य को पछाड़ना है और पछाड़कर आगे बढ़ाना है तो सही और गलत के भेद का विचार कितनी देर ठहर सकता है।

हम सभी ने एक अंधे व्यक्ति और लंगड़े व्यक्ति की कहानी अवश्य सुनी होगी। गाँव में आग लगने पर अंधा व्यक्ति लंगड़े व्यक्ति को कंधे पर बिठाकर ले जाता है। इस कहानी में अंधा व्यक्ति भागने का कार्य करता है तो लंगड़ा उसे भगाने के लिए रास्ता दिखाने का कार्य करता है। इस प्रकार दोनों मिलकर एक दूसरे के सहयोग से अपना जीवन बचा लेते हैं। यह कहानी एक दूसरे के सहयोग से पूर्णता को दर्शाती है। यह कहानी हमारी शिक्षण प्रक्रिया को एक रास्ता सुझाती है कि कक्षा में विभिन्न क्षमताओं और योग्यताओं वाले विद्यार्थी एक दूसरे के सहयोगी बनकर सीखेंगे तो शिक्षा की वर्तमान की अनेक समस्याएँ तो हल होगी ही साथ ही भविष्य के समता मूलक समाज का विकास करने में सहायता मिलेगी। किसी भी सामाजिक परिस्थिति में सहयोग एक अनिवार्य आवश्यकता है। शिक्षा के द्वारा इस मानवीय गुण का विकास बालकों में सुगमता से हो सकता है यदि अध्यापक शिक्षक अधिगम की प्रक्रिया को सहयोगी बना दे।

प्रतिस्पर्धा के विध्वंसात्मक परिणाम के रूप में हम कक्षा की एक सामान्य सी स्थिति को उदाहरण के तौर पर देखते हैं। अध्यापक के प्रश्न पूछने पर कुछ विद्यार्थी जिन्हें प्रश्न का उत्तर पता है वह अपने हाथ खड़े करके ऊंची आवाज में अध्यापक का ध्यान आकर्षित करने की कोशिश करते हैं तो इसमें भी जिन्हें उत्तर नहीं पता वह नीचे सर झुका कर अपने को छुपाने की कोशिश करते हैं। यदि छात्र खड़ा होकर गलत उत्तर दे दे तो भी जिनके हाथ खड़े और उतर जानते हैं वह यह सोचकर खुश होते हैं कि उन्हें अपने को सही सिद्ध करने का एक और अवसर मिला है और जिन्हें सही उत्तर नहीं पता वे भी यह सोचकर खुश होते हैं कि केवल वह ही अकेले अनभिज्ञ नहीं है और भी बालक उनके जैसे कक्षा में हैं। यह एक सामान्य सी वर्तमान शिक्षा प्रक्रिया की स्थिति है जो कक्षा के वातावरण को अस्वस्थ करने के साथ-साथ तनावपूर्ण भी बनाती है। कक्षा की अत्यधिक प्रतिस्पर्धात्मकता बालकों से उनके बचपन को तो छीन लेती है जैसा कि आजकल हम टीवी पर बालकों की प्रतिस्पर्धाओं में देखते हैं। इसके विकल्प के रूप में कक्षाओं में दूसरी तरफ कक्षा का वह वातावरण जहाँ बालक एक दूसरे के सहयोग से सीखते हैं और जिसमें प्रत्येक बालक को वह जो जानता-समझता है उसे अपने साथियों को बताकर-समझाकर जो अनुभव करता है उसे उदाहरण के रूप में देखते हैं। इस स्थिति में सीखने वाला बालक सीख कर खुश है क्योंकि सीखना हमेशा ही व्यक्ति को आनंदित करता है और सिखाने वाला इसलिए खुश है कि उसने किसी का सहयोग सीखने में किया है। इस व्यक्तिगत खुशी के साथ-साथ कक्षा का वातावरण यहां सौहार्दपूर्ण, अंत:क्रियात्मक, सामंजस्यपूर्ण और सहयोगी है जो सभी आयु के बालकों में सामाजिक कौशलों के विकास का सही माध्यम है। जैकवास डेलर्स कमीशन की रिपोर्ट (1996) '21वीं शताब्दी के लिए शिक्षा' के चौथे आधार स्तंभ 'साथ-साथ जीना सीखना '(लर्निंग टू लीव टुगेदर) के उद्देश्य को सरलता से प्राप्त करने के लिए भी सहयोगी अधिगम शिक्षण की एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है।

अध्यापन के दौरान अध्यापक अलग-अलग उद्देश्यों के अनुसार कक्षा की संरचना को निर्धारित करते हैं। शिक्षक के परंपरागत व्याख्यान प्रदर्शन कक्षा संरचना में जहाँ अध्यापक सक्रिय है वहीं छात्र निष्क्रिय रहकर सुनते रहते हैं। एक अन्य कक्षा संरचना में अध्यापक प्रश्न करते हैं तब छात्र उत्तर देते हैं। परंतु केवल कुछ छात्रों की ही इस प्रक्रिया में सहभागिता होती है। उत्तर जानने और उत्तर न जाने वाले विद्यार्थियों की स्थिति को ऊपर के उदाहरण में दिया गया है। व्यक्तिगत अनुदेशन कक्षा संरचना में एक समय में अध्यापक एक ही विद्यार्थी से अंत:क्रिया कर सकता है तब शेष कक्षा पर ध्यान नहीं दिया जा सकता है। परीक्षा लेते समय भी प्रत्येक विद्यार्थी व्यक्तिगत रूप से कार्य करता है। उपर्युक्त सभी कक्षा संरचना व्यक्तिगत प्रयासों पर बल देते हैं जिसमें बालक अकेले रहकर कार्य करता है। इन कक्षा संरचनाओं में बालकों का सामाजिक-भावनात्मक विकास हो पाना संभव नहीं है जो कि व्यक्तित्व विकास का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। जब हम मनुष्य को सामाजिक प्राणी कहते हैं तो इसमें व्यक्ति का सामाजिक-भावनात्मक विकास परिलक्षित होता है। सामाजिक और भावनात्मक रूप से परिपक्व व्यक्ति ही समतामूलक समाज के निर्माण में योगदान दे सकते हैं। अध्ययनों से सिद्ध हुआ है कि विद्यार्थियों का अधिगम यानी सीखना उनकी अभिप्रेरणा से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित

होता है और कार्य एवं कक्षा संरचना का इनके सीखने पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं होता है। वर्तमान की अध्यापन विधियाँ एक ओर व्यक्तिगत प्रयासों पर बल देती हैं वहीं प्रतिस्पर्धा को भी बढ़ाती हैं। सहयोगी अधिगम की विधियों में कक्षा में अधिकतर समय विद्यार्थी विषम समूहों में काम करते हैं और इसमें समूह उपलब्धि पर बल दिया जाता है। बालक के व्यक्तिगत प्रयास भी समूह उपलब्धि के लिए होने की स्थिति में कठिन कार्य भी संभव हो सकता है और सहयोग पारस्परिक प्रभावशीलता को बढ़ाने का कार्य करता है।

सहयोगी अधिगम विधियों को प्रभावी बनाने के लिए अध्यापकों को कुछ बातों का ध्यान अवश्य रखना पड़ेगा। अध्यापक को सहयोगी अधिगम के लिए विद्यार्थियों में धनात्मक अत: निर्भरता का विकास करना आवश्यक है। इसमें एक विद्यार्थी की सफलता समूह के दूसरे विद्यार्थियों के प्रयासों पर निर्भर करती है। यहाँ विद्यार्थी टीम भावना से कार्य करते हैं और सभी एक लक्ष्य के लिए कार्य करते हैं। एक विद्यार्थी की गलती पर अन्य विद्यार्थी भी दुखी होंगे। इसके विपरीत व्यक्तिगत प्रयासों से प्रतिस्पर्धा द्वारा प्राप्त पुरस्कार भी नकारात्मकता को ही दर्शाता है, जहाँ एक की सफलता दूसरों की असफलता का द्योतक है। इसमें एक विद्यार्थी का प्राप्ति के लिए अन्य को वंचित होना पड़ेगा और एक की गलती करने पर अन्य बालक खुश होते हैं। अध्यापक के लिए दूसरी महत्त्वपूर्ण ध्यान देने वाली बात है कि सहयोगी अधिगम के लिए लक्ष्य समूह के निर्धारित किए जाएँ और उत्तरदायित्व विद्यार्थी के व्यक्तिगत निर्धारित किया जाए। इस स्थिति में कक्षा का सहयोगी व्यवहार विकसित होगा। विद्यार्थी सहयोगी रूप से प्रयास करेंगे जिसमें बालकों का संप्रेषण आवश्यक होगा। प्रतिस्पर्धात्मक विधियों में विद्यार्थियों में असहयोगी व्यवहार विकास से स्वार्थीपन विकसित होने की संभावना होगी जो कि न केवल समाज और सामाजिक संबंधों के लिए घातक है अपितु बालक स्वयं के लिए भी हानिकारक है। अध्यापक को सहयोगी अधिगम विधियों को प्रयोग करते समय यह सुनिश्चित करना भी अनिवार्य है कि विद्यार्थियों में अंतर व्यक्तिक कौशलों का विकास इसके माध्यम से हो। यह विद्यार्थियों में प्रजातांत्रिक नेतृत्व, निर्णय क्षमता, आपसी सहयोग निर्माण, प्रभावी संप्रेषण, संघर्ष प्रबंधन के साथ-साथ विभिन्न परिप्रेक्षों में सराहना करने जैसे कौशलों का विकास भी करती हैं। सहयोगी अधिगम में विद्यार्थी एक दूसरे की सफलता की प्रोन्नति के लिए सहायता, प्रशंसा, सहारा देना और दूसरों के प्रयासों की सराहना करने जैसे धनात्मक मूल्यों को विकसित करने में सक्षम बनते हैं। इसके विपरीत दूसरे विद्यार्थियों से प्रतिस्पर्धा उन में इन गुणों के विकास की बाधक बनती है। अध्यापक का सहयोगी अधिगम विधियो द्वारा समूह संक्रियाओं को बढ़ावा देना भी एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। इसमें अध्यापक विद्यार्थियों को सिखाते हैं कि एक दूसरे के साथ कार्य कैसे करना है, समूह के लक्ष्य को प्राप्त कैसे करना है और कक्षा में सामाजिक अंत: क्रिया के द्वारा सहभागी वातावरण का निर्माण कैसे किया जाए। इन सब बातों को ध्यान में रखकर एक अध्यापक बड़े आकार की कक्षाओं जिसमें अध्यापक विद्यार्थी अनुपात अधिक है और प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च कक्षाओं तक सभी के लिए प्रभावी अधिगम करवा सकते हैं।

सहयोगी अधिगम की विधियों के प्रकार अनेक हो सकते हैं। सहयोगी अधिगम का प्रकार कक्षा के आकार, विद्यार्थियों के स्तर और विषय विशेष की आवश्यकता के संदर्भ में परिवर्तित हो सकते हैं। सभी सहयोगी अधिगम विधियों का मुख्य विचार एक ही है विद्यार्थियों का समूह में सहयोगी बनकर कार्य करना और सीखना। समूह का आकार दो विद्यार्थियों से अनेक विद्यार्थियों का हो सकता है। 4 से 6 विद्यार्थियों का समूह कक्षा और समूह प्रबंधन के अनुसार सही माना जाता है। सहयोगी अधिगम की विधियो में छात्र समूह उपलब्धि विभाजन, समूह खेल टूर्नामेंट, समूह सहायतार्थ व्यक्तिगतता मिलकर सीखना, समूह अन्वेषण आदि पूर्व में निर्धारित विधियाँ हैं। सहयोगी अधिगम की विधि का चयन अध्यापक अपनी कक्षा के आकार, विषय की आवश्यकता, विषय की प्रकृति, उद्देश्यों और विद्यार्थियों को दी जाने वाली स्वायत्तता के अनुसार कर सकता है। अध्यापक सहयोगी अधिगम की किसी भी विधि का उपयोग करें अथवा स्थिति के अनुसार स्वयं की ही कोई विधि अपनाए पर उसे शिक्षण उद्देश्यों का विशिष्टीकरण, कार्य की संरचना, सहभागी प्रक्रिया शिक्षण, समूह निष्पत्ति की मॉनिटरिंग और विचार विमर्श की स्पष्टता होना आवश्यक है।

शोध अध्ययनों द्वारा स्पष्ट हुआ है कि सहयोगी अधिगम की विधियाँ विभिन्न विषयों में और विभिन्न स्तरों (प्राथमिक स्तर से लेकर महाविद्यालय, विश्वविद्यालय स्तर तक) के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के लिए परंपरागत शिक्षण विधियों से सार्थक रूप से अधिक प्रभावी हैं। विद्यार्थियों के व्यवहार पर भी इन विधियों का सकारात्मक प्रभाव पड़ता है और विद्यार्थियों की विद्यालय और विषयों के प्रति अभिवृत्ति पर भी इनका धनात्मक प्रभाव शोध अध्ययनों में पाया गया है। सहयोगी अधिगम विधियाँ विद्यार्थियों की सीखने संबंधी चिंता (एंजायटी) को कम कर एक बेहतर अधिगम वातावरण प्रदान करती हैं वहीं ये अधिगम विधियाँ विद्यार्थियों में धनात्मक अंतरव्यक्तिक संबंधों का विकास भी करती हैं। इस प्रकार इन शिक्षण विधियों द्वारा विद्यार्थी अधिगम में आनंद लेते हैं और बिना हिचक के अपने विचार और ज्ञान को साथियों से साझा करते हैं। इससे जहाँ एक तरफ विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि बढ़ती है वहीं उनके सामाजिक-भावनात्मक विकास द्वारा सकारात्मक व्यवहार में परिपक्वता भी आती है। वर्तमान शिक्षा की चुनौतियों और समाज निर्माण के लिए सहयोगी अधिगम विधियाँ एक विकल्प नहीं अपितु आज की अनिवार्यता है।❑

हमें आविष्कारकर्ता चाहिए या चुपड़ी रोटी? मातृभाषा शिक्षण का परिप्रेक्ष्य

डॉ. राघव प्रकाश
निदेशक,
परिष्कार कॉलेज समूह,
जयपुर (राज.)

दुनिया के तमाम शिक्षाशास्त्री और मनोवैज्ञानिक इस विचार पर एकमत हैं कि बच्चे की प्राथमिक शिक्षा उनकी मातृभाषा में ही होनी चाहिए। फिर यह बहस क्यों कि भारत- जैसे गैर-अंग्रेज़ी भाषी देश में बच्चे का विकास अंग्रेजी- जैसी विदेशी भाषा में शिक्षा लेने से ज़्यादा होगा। केवल इस आधार पर कि अंग्रेज़ी में पढ़कर कुछ विद्यार्थियों यानि 0.05 प्रतिशत को अंतरराष्ट्रीय कंपनियों में काम मिल सकेगा कि वे अनेक देशों में काम कर सकेंगे। यह सच है कि कुछ लोग दुनिया की बड़ी कंपनियों में मोटे वेतन पर काम कर भी रहे हैं क्योंकि वे अंग्रेजी जानते हैं या उनकी शिक्षा अंग्रेजी में हुई है। प्रश्न है कि 99.95 प्रतिशत लोगों के लिए मातृभाषा अधिक उपयोगी है या अंग्रेज़ी; और इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि उन 0.5 प्रतिशत लोगों में भी ज्यादातर की प्राथमिक शिक्षा उनकी अपनी मातृभाषा में हुई है, उन्होंने अंग्रेज़ी बाद में सीखी है।

दरअसल, भाषा-माध्यम के इस सारे मसले को शिक्षाशास्त्रीय ढंग से, तथा बहुत गंभीरता से समझना चाहिए। बच्चे की आधारभूत दिमागी शक्तियाँ- समझना, विश्लेषण करना, निष्कर्ष निकालना तथा नया सोचना आदि का अधिकतम और अधिक तेजी से विकास दस-बारह वर्ष तक हो जाता है, या हो सकता है। इस उम्र तक जो विद्यार्थी जिस भाषा में सहजता से व्यवहार करता है वह केवल और केवल उसकी मातृभाषा ही है। अर्थात् एक बच्चे के दिमाग के अधिकतम, उत्कृष्टतम विकास की सहयात्री उसकी मातृभाषा ही होती है। यदि हमने इस उम्र में उसे (भारत में अंग्रेज़ी जैसी) गैर-मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने में झोंक दिया तो उसके दिमाग की उन उक्त आधारभूत क्षमताओं के विकास में निश्चित रूप से बाधा पहुँचेगी। यह ठीक वैसे ही होगा जैसे कि हम एक बच्चे को घर में तो अपने पाँवों (मातृभाषा) से चलने दें और विद्यालय में उसे बैसाखियों (गैर-मातृभाषा) के सहारे ही चलना सिखाएँ, उसके अपने पाँवों से नहीं। ऐसी स्थिति में बच्चे की चाल की गति, आत्मविश्वास और अधिकतम दौड़ सकने की प्रक्रिया में निश्चित ही बाधा पहुँचेगी। हालाँकि अंग्रेजी के माध्यम से किताबें पढ़ने, उत्तर लिखने से अंग्रेज़ी भाषा के सीखने में तो वृद्धि होगी, वह धीरे-धीरे अंग्रेज़ी में बोलने भी लगेगा; लेकिन हम यह अंदाजा नहीं लगा सकेंगे कि उसके अन्य भाषा में सीखने के कारण उसके दिमाग की दौड़ कितनी धीमी हो गई है; नया सोचने, समस्या-समाधान करने में वह कितना आत्मविश्वास खो चुका है; वह खुलकर इतना सोच ही नहीं पाया है। दरअसल, मातृभाषा बच्चे के सपनों को पंख लगाती है, और अन्य भाषा उसकी नवाचारशीलता के पाँवों में बेड़ी बन जाती है।

भारत में अंग्रेज़ी माध्यम से पढ़ने वाले बच्चों का जो बौद्धिक-विकास

हमें नज़र आता है वह गैर–मातृभाषा अंग्रेज़ी में प्राप्त होने वाली शिक्षा के कारण नहीं है, बल्कि वह अंग्रेज़ी माध्यम के विद्यालयों के योग्य शिक्षकों, विद्यालय की उन्नत शिक्षण–पद्धति, अच्छी पुस्तकालय सुविधा, उत्तम इन्फ्रास्ट्रक्चर, अभिभावकों की अतिरिक्त जागरूकता, शिक्षण–सामग्री की गुणवत्ता आदि–आदि के कारण है। यदि ये सभी प्रकार के सहयोगी संसाधन विद्यार्थी को उसकी अपनी मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करने में मिल जाएँ तो वे ही बच्चे समझने और नया सोचने में अधिक सामर्थ्य विकसित कर सकेंगे। अंग्रेजी माध्यम में पढ़कर निकलने वाले बच्चों में ज्ञान, अंग्रेजी भाषा का स्तर, आत्मविश्वास के साथ विचार–विमर्श करने का कौशल यदि अच्छे स्तर का होता है तो उसका कारण विद्यालय एवं परिवार के शिक्षा–प्रबंधन की गुणवत्ता है, न कि गैर–मातृभाषा अंग्रेजी की शिक्षा।

अंग्रेजी अच्छी भाषा है, लेकिन यह केवल उन्हीं बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा की माध्यम भाषा होनी चाहिए, जिनकी मातृभाषा भी अंग्रेजी हो। यदि हम अपने घरों में बच्चों को रोजमर्रा के व्यवहार में अंग्रेजी भाषा का वातावरण नहीं दे सकते; परिवार में हम उन्हें हिंदी, पंजाबी, गुजराती, तमिल, मलयालम सिखा रहे हैं; और उनकी प्राथमिक स्तर की शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी रख रहे हैं तो यह निश्चित समझिए कि हमने उस बच्चे की नवाचारशीलता, सर्जनात्मकता; यानी उसकी नया सोचने की अमूल्य क्षमता को तो सीमित कर ही दिया है। भारत, बांग्लादेश, पाकिस्तान, श्रीलंका, नेपाल तथा इसी तरह के अफ्रीकी देशों में जहाँ अतीत में औपनिवेशिक स्थितियाँ रही थीं, विदेशियों का शासन रहा था, और वहाँ अपने शासकों की साम्राज्यवादी व्यापारिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अंग्रेजी, फ्रांसीसी, स्पेनी आदि भाषाओं में शिक्षा दी जाती

> भाषा–माध्यम के इस सारे मसले को शिक्षाशास्त्रीय ढंग से, तथा बहुत गंभीरता से समझना चाहिए। बच्चे की आधारभूत दिमागी शक्तियाँ– समझना, विश्लेषण करना, निष्कर्ष निकालना तथा नया सोचना आदि का अधिकतम और अधिक तेजी से विकास दस–बारह वर्ष तक हो जाता है, या हो सकता है। इस उम्र तक जो विद्यार्थी जिस भाषा में सहजता से व्यवहार करता है वह केवल और केवल उसकी मातृभाषा ही है। अर्थात् एक बच्चे के दिमाग के अधिकतम, उत्कृष्टतम विकास की सहयात्री उसकी मातृभाषा ही होती है।

रही थी, वहाँ उन विदेशी शासकों के चले जाने के बाद अभी भी गैर–मातृभाषा दी जा रही है, वहाँ के बच्चों की सर्जनात्मकता को उन्होंने कितना दबोचा है, कितना कुंठित किया है और उन समाजों की आविष्कारकता की आग को कितना बुझा दिया है; इसका आकलन करना ही असंभव है। जैसे आर्थिक असमानता समाज में आर्थिक शोषण को जन्म देती है और शोषित–गरीब व्यक्ति से उसका सहज विकास छीन लेती है, हम उसी तरह, एक बच्चे को उसके बौद्धिक, भावात्मक और कौशलगत विकास में उसकी मातृभाषा से वंचित करके, उन बच्चों की शैक्षिक क्षमताओं का विकास छीन लेते हैं, हम विदेशी भाषा के माध्यम से बच्चों को लद्दू खच्चर तो बना सकते हैं किंतु अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सर्जनात्मकता की दौड़ जीत सकने वाले शक्तिशाली घोड़े नहीं बना सकते।

दरअसल, हम बच्चों की मातृभाषा को तो बदल नहीं सकते लेकिन मातृभाषा के शैक्षिक स्तर को ऊँचा बनाने का प्रयत्न अवश्य कर सकते हैं। किंतु भारत– जैसे देश का जन–प्रतिनिधि और नौकरशाह वर्ग आर्थिक दृष्टि से काफी संपन्न है इसलिए वह अपने बच्चे को अंग्रेज़ी माध्यम के सुविधा–संपन्न विद्यालय में पढ़ा लेता है, और इसी कारण वह अपनी मातृभाषा में पढ़ने वाले विद्यालयों की गुणवत्ता को लेकर बेफिक्र ही नहीं, बल्कि साजिश के साथ विरोधी भी रहता है। वह आम जनता के विद्यालयों की बहुत अच्छी गुणवत्ता चाहता ही नहीं। इसलिए एक ओर अंग्रेज़ी माध्यम के बच्चों की सर्जनात्मकता का अपेक्षित विकास नहीं हो पा रहा है तो दूसरी ओर मातृभाषायी विद्यालयों के बच्चे भी पिछड़ रहे हैं।

अमेरिका, इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, जापान, चीन, रूस ने दुनिया में दर्शन से लेकर विज्ञान एवं तकनीक के क्षेत्र में इसलिए अधिक प्रगति की है क्योंकि उन्होंने अपने बच्चों को अपनी मातृभाषा में ही पढ़ाया है।

इसीलिए उनके बच्चों की सर्जनात्मकता अधिकतम स्तर को प्राप्त कर सकी है। हाँ, प्रारंभिक शिक्षा के बाद अन्य भाषा को पढ़ना, और अंग्रेजी–जैसी अंतरराष्ट्रीय भाषा को पढ़ना बच्चे के लिए उपयोगी हो सकता है, लेकिन मातृभाषा के स्थान पर नहीं। गंभीर सवाल यह है कि हम हमारे बच्चों को मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देकर आविष्कारक बनाना चाहते हैं या विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा देकर उसे केवल चुपड़ी रोटी की सुविधा देना चाहते हैं?

मातृभाषा माँ का दूध है, शिशु को शैशव काल में माँ का दूध ही चाहिए, बाद में बच्चे के लिए अन्य भोजन भी उपयोगी हो सकता है। विश्वास है कि एक–न–एक दिन हमारे समाज को शिक्षा के माध्यम के बारे में सही समझ अवश्य आएगी। ❑

प्राथमिक स्तर पर विज्ञान प्रयोगशाला की पहल

संदीप जोशी
व्याख्याता,
जालौर (राज.)

एक छोटा-सा प्रयास भी बहुत दूर तक जा सकता है। अपनी कल्पना से भी बहुत अधिक आगे तक जा सकता है, यह एक विज्ञान शिक्षक के जीवन का उत्तम अनुभव है।

अध्ययन के सारे विषय, विशेषकर विज्ञान विषय तो प्रयोग, गतिविधि और क्रिया आधारित विषय है। विद्यार्थी जब स्वंय करके सीखता है तो वह ज्ञान स्थायी रहता है पर व्यवहार में सामान्यतया दसवीं कक्षा के बाद विज्ञान लेने वाले छात्र ही प्रयोगशाला के दर्शन कर पाते हैं। वर्ष 2006/07 तक तो नवीं दसवीं कक्षा के छात्रों के लिए भी विज्ञान प्रयोगशाला की व्यवस्था सामान्यतया नहीं मिलती थी। ऐसे में उस समय प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए विज्ञान प्रयोगशाला की कल्पना करना दूर के ढोल सुहावने जैसा था, आज भी बहुत लोगों के लिए यह नई बात लग सकती है।

वर्षों तक हमारी शिक्षण व्यवस्था में पहली कक्षा से आठवीं कक्षा तक के विद्यार्थियों के लिए विज्ञान प्रयोगशाला की कोई कल्पना ही नहीं थी। विज्ञान का विद्यार्थी होने के नाते और विद्यालय में विज्ञान का अध्यापन करवाते हुए मेरे मन में एक विचार आया कि अपने इस उच्च प्राथमिक विद्यालय में भी विज्ञान प्रयोगशाला होनी चाहिए।

मन में यह विचार इसलिए आया क्योंकि पश्चिमी राजस्थान जहाँ का मैं रहने वाला हूँ, हमारे यहाँ जालौर जिले से बहुत बड़ी संख्या में विद्यार्थी आठवीं दसवीं तक का अध्ययन करके व्यवसाय करने के लिए दक्षिण भारत के विभिन्न प्रांतों में चले जाते हैं। लगभग हर दूसरे परिवार से कोई न कोई प्रवासी है। अब चूंकि आठवीं दसवीं के बाद ये विद्यार्थी आगे की पढ़ाई नहीं कर पाते, ऐसे में वे जीवन भर विज्ञान के सामान्य सिद्धांतों और उपकरणों जैसे - परखनली, बीकर, जार, प्रिज्म, स्लाइड, वॉच ग्लास, अम्ल क्षार से अपरिचित ही रह जाते हैं। फिर उनमें वैज्ञानिक दृष्टि का विकास कैसे होगा! इस विचार ने ही मुझे मेरे उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी विद्यालय में विज्ञान प्रयोगशाला की स्थापना के लिए प्रेरित किया।

प्राथमिक कक्षाओं के लिए इस विज्ञान प्रयोगशाला का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य था बालकों में बचपन से ही विज्ञान की समझ और रुचि बढ़ाना। विज्ञान शिक्षण को प्रभावी

बनाना और बच्चों में विज्ञान अध्ययन की रुचि पैदा करना। शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य भी विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टि का विकास करना है। विविध प्रकार के अंधविश्वासों से बाहर निकलने में वैज्ञानिक सोच अत्यंत सहायक सिद्ध होती है और इसी पीढ़ी के छात्र भविष्य में विज्ञान के क्षेत्र में देश का नेतृत्व भी करते हैं। अत: उन्हें बचपन से ही विज्ञान की प्रायोगिक जानकारी भी मिलनी चाहिए।

वर्ष 2007 में मैं प्राथमिक स्तर के शिक्षक (तृतीय श्रेणी अध्यापक) के रूप में जालोर जिले के सामतीपुरा गाँव में कार्यरत था। यहाँ मैंने अपनी राजकीय पाठशाला में आठवीं तक के बच्चों के लिए एक प्रयोगशाला तैयार की जो इस तरह की राज्य की पहली विज्ञान प्रयोगशाला थी। इसके लिए दवा प्रतिनिधि (मेडिकल रिप्रेजेन्टेटिव) मित्रों एवं चिकित्सक मित्रों से मॉडल एकत्रित किए गए। चिकित्सकों एवं दवा प्रतिनिधियों के पास दवा कंपनी के द्वारा दिए गए शरीर रचना के बहुत सारे मॉडल होते हैं। उस समय विद्यालयों में उपकरण खरीदने के लिए प्रति शिक्षक 500/- रुपये मिलते थे, उस राशि से भी विज्ञान सामग्री खरीदी। विज्ञान की कुछ सामग्री व्यक्तिगत रूप से खरीद कर लाई गई। ऐसी सामग्री जिनके नाम विद्यार्थी अध्ययन के दौरान पढ़ता-सुनता है जैसे परखनली (टेस्ट ट्यूब), स्लाइड, तापमापी, वर्षामापी, बीकर, गैसजार, फ्लास्क आदि।

वर्तमान में राज्य के लगभग सभी 64000 राजकीय विद्यालयों में विज्ञान किट के रूप में प्राथमिक कक्षाओं के लिए भी विज्ञान सामग्री है। कालांतर में सभी ग्राम पंचायत स्तर पर माध्यमिक/ उच्च माध्यमिक विद्यालय बन गए और उनमें से अधिकांश विद्यालयों में एक बार फिर से एक-एक लाख रूपये की विज्ञान सामग्री भेजी गई। इस प्रकार राजस्थान में अब अनेक विद्यालयों में बहुत अच्छे स्तर की विज्ञान प्रयोगशाला सामग्री है।

एक पुस्तक में प्राचीन भारत के महान वैज्ञानिकों के चित्र बने हुए थे। उस जमाने के चिकित्सकीय उपकरण एवं शल्य चिकित्सा करते हुए आचार्य सुश्रुत का फोटो भी था इन सब का एक बड़ा चित्र फ्लेक्स पर बनवाया। यह चित्र पाली (राजस्थान) से बनवाया गया क्योंकि तब तक जालोर में फ्लैक्स छपने प्रारम्भ नहीं हुए थे। यह चित्र एक कक्ष में लगाया, एक बॉक्स में सारा सामान रखा, उसे एक मेज पर जमा दिया और प्रयोगशाला आरंभ। उपलब्ध सामग्री में से आवश्यकतानुसार सामान निकालते। बच्चे उन्हें उत्साह एव उत्सुकता से देखते, पकड़ते, खेलते, आनन्दित होते।

एक बार तत्कालीन विधायक श्री जोगेश्वर जी गर्ग गाँव में किसी कार्यक्रम में आए हुए थे। पूर्व परिचित होने के कारण विद्यालय में मिलने चले आए। विद्यालय का स्वरूप, स्वच्छता और विद्यालय के कुछ नवाचार देख कर अत्यंत प्रभावित हुए। उन्हें विद्यालय की विज्ञान वाटिका और यह विज्ञान प्रयोगशाला दिखाई। उन्होंने स्वयं पूछ लिया- मुझे क्या सहयोग करना है। हमने विधायक कोष से 25,000 रुपये का आग्रह कर दिया। जहाँ एक तरफ अन्य लोग विधायक कोष से पाँच-दस लाख की माँग करते हैं वहीं हमने मात्र रुपये 25000 का आग्रह किया तो उन्होंने सहजता से बात स्वीकार कर ली और कुछ ही दिनों में उनका पत्र और वित्तीय स्वीकृति आ गई। फिर तो हमारा उत्साह चरम पर था। पच्चीस हजार रुपये हमारे लिए पर्याप्त राशि थी। अब व्यवस्थित विज्ञान प्रयोगशाला बनाने का स्वप्न

पूर्णतया साकार होने वाला था।

कक्षा एक से आठ तक की विज्ञान की पुस्तकों के सारे पाठ 'मिशन मोड' में पुनः पढ़े। उन सब में जिस-जिस सामान का उल्लेख था, उसकी सूची बनाई। यह कार्य समानांतर रूप से विद्यार्थियों को भी दिया गया। उनसे कहा कि अपनी विज्ञान की पुस्तक के सारे पाठ पढ़ो और उनमें लिखे सब सामान की सूची बनाओ। यह सब सामान अपने स्कूल में लाएंगे। विद्यार्थियों ने भी पूरे उत्साह के साथ पूरी पुस्तक छान डाली। लगभग 200 से अधिक उपकरणों, सामग्री एवं सामान्य रसायनों की सूची बन गई।

हमारा जिला केंद्र जालोर छोटा स्थान होने से यहाँ विज्ञान प्रयोगशाला का सामान नहीं मिल सका। इधर-उधर से पूछताछ करके जयपुर के दुकानदारों के पते एकत्रित किए। संस्था प्रधान की अनुमति लेकर स्वयं जयपुर गया। विभिन्न दुकानदारों के साथ भाव-ताव किए। दुकानदारों को इस विज्ञान प्रयोगशाला का विचार समझाया। उन्हें बताया कि यह नया प्रयोग है और सोचो यदि पूरे राजस्थान के सभी उच्च प्राथमिक विद्यालयों में विज्ञान प्रयोगशाला बन जाएगी तो सोचिए आपके पास कितने सारे ऑर्डर आएंगे। इसलिए अभी आप कम-से-कम रेट में अधिक-से-अधिक सामान दीजिए। कुछ सामग्री बाद में जोधपुर से खरीदी। लगभग रुपये 15000 का विज्ञान प्रयोगशाला से संबंधित बहुत सारा सामान, उपकरण, मॉडल, रसायन वर्किंग मॉडल, सरल सूक्ष्मदर्शी, संयुक्त सूक्ष्मदर्शी इत्यादि लाया।

रुपये 10000 में संस्था प्रधान जी के साथ सुमेरपुर जाकर दो काँच वाली अलमारियाँ और दो बड़े प्रयोगशाला टेबल क्रय किए गए। इस प्रकार हमारी व्यवस्थित प्रयोगशाला शुरू हुई। विद्यार्थियों ने भी इससे बहुत आनंद लिए। जिन चीज़ों के केवल किताबों में नाम ही पढ़े थे, वे सब चीज़ें उनके हाथों में थीं। इस आनंद की दिव्य अनुभूति उन्हें भी हो रही थी और मुझे भी।

जैसा चिकित्सकों के पास होता है, वैसा असली वाला स्टेथेस्कोप गले में डालकर अपने सहपाठी की हृदय की धड़कन नापते हुए वालाराम और किकिया को देखना अब भी आँखों के सामने है। पानी मे सोडियम के टुकड़े डालकर आग लगाने वाले प्रयोग के तो क्या अद्भुत अनुभव हुए बच्चों को, उनका वर्णन संभव ही नहीं। कभी कभी तो विद्यालय आने वाले अभिभावक भी कह देते कि सर पानी मे आग लगाकर दिखाओ! विद्यार्थियों में विज्ञान पढ़ने के प्रति दीवानगी बढ़ाने में इस प्रयोगशाला ने बड़ी भूमिका निभाई। बाद में एक छात्र ने जिला स्तर पर इंस्पायर एवॉर्ड भी जीता जिसने सौर ऊर्जा से माइक सिस्टम चलाने का प्रयोग किया था।

शबरी जैसे बाल मन के अद्‌भुत भाव

छात्रों के लिए कोई शिक्षक जयपुर तक जाकर विज्ञान का इतना सामान ला सकता है, इस बात ने उस ठेठ ग्रामीण परिवेश के छात्रों को बहुत प्रेरित किया। शिक्षकों के प्रति उनकी श्रद्धा बहुत बढ़ी। उस समय उनके बाल मन ने अपनी भावनाएँ व्यक्त करने के लिए मेरा जो शिक्षक सम्मान किया, उनकी अपनी अलग कहानी है। वैसा सम्मान अकल्पनीय है। वह अत्यंत शुद्ध मनोभाव था। मैं सातवीं का कक्षाध्यापक था। कक्षा के विद्यार्थियों ने एक विशेष योजना बनाई। (कुछ के तो नाम आज 13 वर्ष बाद भी याद है, जगताराम, चतराराम, तलसी, ललित, राजाराम....)

प्रार्थना सभा के बाद पहले कालांश के लिए जैसे ही मैं कक्षा में प्रवेश करने लगा तो दरवाजे पर बहुत से फूल बिछे हुए थे, थोड़ा सा रुका, मुस्कुराया आगे बढ़ा।

कक्षा में प्रवेश करते ही सभी विद्यार्थियों ने पुष्प वर्षा प्रारंभ कर दी। मेरा अचंभित रह जाना स्वभाविक था। पुछा, यह सब क्या है, बोले- सर, आप

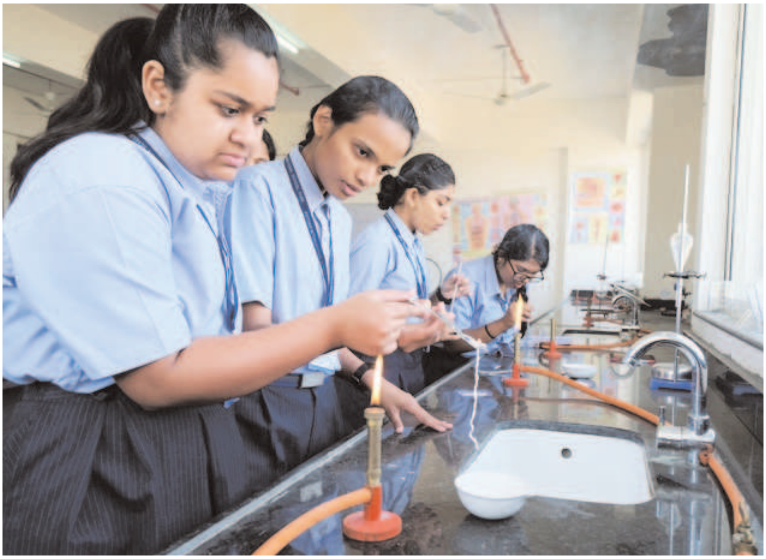

हमें बहुत अच्छे लगते हैं, इसलिए हम सब ने यह स्वागत किया है। मैं भीतर से भावुक मगर बाहर से हँस पड़ा। उन्हें बैठने का कहा, खुद भी बैठने लगा तो देखा टेबल पर भी पुष्प बिछे हुए हैं, दो स्थानीय फल मतीरे रखे हुए हैं और एक प्लेट में बूंदी के लडडू। अरे भाइयो, आज हुआ क्या है आपको.... बोले कुछ नहीं सर, ऐसे ही हमारे मन में आया तो आज लेकर आए हैं। लड्डू के पैसे उन्होंने आपस में छोटी छोटी राशि एकत्र करके जमा किये थे। अनेक ढाबों पर, दुकानों पर सूखे-सूखे से लड्डू मिलते हैं जो अक्सर लम्बी दूरी के वाहन चालक उपयोग में लेते हैं। पर आप सोचिए, उस दिन उन लड्डुओं की मिठास शबरी के बेरों से क्या कम रही होगी। सबने मिलकर वे लड्डू खाए। बच्चों के लिए चॉकलेट मंगवाई। सबने मिल कर एक दो अच्छे गीत गाए। आवाज बहुत अच्छी भले नहीं है पर गाने का स्वभाव है। ऐसे आनंद पूर्वक वह कालांश बीता। पर बच्चों ने इसे एक नियमित दिनचर्या सा बना लिया। अगले दिन फिर से द्वार पर पुष्प, भीतर पुष्प वर्षा.... इनकी देखा देखी अन्य कक्षाओं ने भी यह स्वागत सत्कार प्रारंभ कर दिया। 2 दिन बाद सभी को डांट लगाकर यह बंद करवाना पड़ा पर उन निर्मल मनों की भावनाएँ आज भी अभिभूत करती हैं। खैर....

एकोहं बहुस्याम

यह प्रयोग इस विद्यालय तक रुका नहीं, बल्कि दूर तक गया। अपनी कल्पना से बहुत अधिक दूर तक गया। जालोर के तत्कालीन जिला कलेक्टर श्यामसुंदर जी बिस्सा थे। उन्हीं दिनों मैं बस्ते के बोझ को कम करने वाले विषय पर भी कार्यरत था। इस ज्ञानकोष मॉडल के कारण चर्चा में था। इस कारण एवं सामाजिक सक्रियता के कारण भी उनसे अच्छा परिचय हो गया था। एक बार वे विद्यालय निरीक्षण के लिए भी आए। यह नवाचार बहुत अच्छा और उपयोगी लगा।

सुयोग से उनका यहाँ जालोर से स्थानांतरण राजस्थान शिक्षा विभाग के प्रारंभिक शिक्षा निदेशक पद पर हुआ। विदाई के लिए उनसे मिलने घर गए तब उन्होंने मेरे शैक्षिक प्रयोगों के लिए उत्साहवर्धन किया, साथ ही उनकी लिखित में पूरी जानकारी भी ली।

कुछ समय बाद उन्होंने फोन करके बस्ते का बोझ कम करने वाले ज्ञान कोष मॉडल की पुस्तक और विज्ञान प्रयोगशाला के सारे सामान की सूची मंगवाई। उनके प्रयासों एवं पहल से पूरे राज्य के सभी सरकारी विद्यालय में विज्ञान किट बनाकर बक्से के रूप में विज्ञान प्रयोगशाला की सामान्य सामग्री भेजी गई। जिनसे पहली कक्षा से आठवीं कक्षा तक के विज्ञान के प्रयोग किए जा सकते हैं। इस प्रयास ने पूरे प्रदेश में विज्ञान शिक्षण के प्रति अच्छा वातावरण बनाया।

व्यापकता

वर्तमान में राज्य के लगभग सभी 64000 राजकीय विद्यालयों में विज्ञान किट के रूप में प्राथमिक कक्षाओं के लिए भी विज्ञान सामग्री है। कालांतर में सभी ग्राम पंचायत स्तर पर माध्यमिक/उच्च माध्यमिक विद्यालय बन गए और उनमें से अधिकांश विद्यालयों में एक बार फिर से एक-एक लाख रूपये की विज्ञान सामग्री भेजी गई। इस प्रकार राजस्थान में अब अनेक विद्यालयों में बहुत अच्छे स्तर की विज्ञान प्रयोगशाला सामग्री है। यह सब सामग्री विज्ञान किट के बॉक्स और अलमारियों की शोभा ही बढ़ाएगी अथवा छात्रों के हाथ में भी आएगी, यह वहाँ के शिक्षक पर निर्भर है।

एक छोटे से विद्यालय का यह प्रयोग पूरे राज्य के लिए उदाहरण बना, राज्यव्यापी हुआ। हज़ारों विद्यालय तक पहुँचा। पहली दहलीज पर तैयार होंगे कलाम शीर्षक से समाचार पत्रों में राज्य स्तरीय खबर बनी। अनेक नए लोगो के फोन और शुभकामनाएँ प्राप्त हुई।

यदि मन का भाव सकारात्मक है, नि:स्वार्थ है तो ईश्वर हमें हमारी कल्पना से अधिक सफलता देता है। ❑

स्वामी विवेकानन्द का शिक्षा दर्शन

डॉ. कृष्ण चन्द्र गोस्वामी
पूर्व प्रोफेसर हिंदी,
राजस्थान कालेज शिक्षा,
भरतपुर (राज.)

किसी भी व्यक्ति के विचारों का विकास दर्शन अथवा जीवन और जगत् विषयक दृष्टि-विशेष के रूप में यों ही नहीं हो जाता। विचारों को इस समुन्नत अवस्था तक विकसित होने के लिए जहाँ एक ओर योग्य मार्ग-दर्शक की अपेक्षा रहती है, वहीं दूसरी ओर, स्वयं उस व्यक्ति के द्वारा की गयी चिन्तन की सतत-सघन साधना भी अपरिहार्य होती है। वस्तुत: चिन्तन की इस सतत ऊर्ध्वगामी साधना के क्रम में ही कोई साधक उन बीज-सूत्रों किंवा जीवन-सत्यों का साक्षात्कार करने में समर्थ हो पाता है जो उसके जीवन और जगद्विषयक दृष्टिकोण को सुस्थिर करने में एक गहरी, एक मूलभूत भूमिका निभाते हैं। स्वामी विवेकानन्द भी इसके अपवाद नहीं हैं।

हममें से जिन लोगों को स्वामी जी के जीवन चरित्र को पढ़ने का सौभाग्य मिला होगा, वे इस बात से अच्छी तरह परिचित होंगे कि नरेन्द्र बचपन से ही ईश्वर, धर्म, आत्मा, जगत् और जीवन आदि के सम्बन्ध में कितने अधिक जिज्ञासु थे। मूर्ति-पूजा को वे अन्धविश्वास का एक प्रकार मानते थे और सत्य के साक्षात्कार की उनमें इतनी प्रबल, इतनी उद्दाम आकांक्षा थी कि रामकृष्ण परमहंस से उनका पहला प्रश्न ही यह था कि 'क्या आपने ईश्वर को देखा है ?' अद्‌भुत बात यह है कि ऐसे जिज्ञासु और सत्यान्वेषी नरेन्द्र को अपने अन्त:करण को उद्विग्न कर देने वाले तमाम प्रश्नों का समाधान भी इन्हीं रामकृष्ण परमहंस के सान्निध्य में प्राप्त हुआ और वे नरेन्द्र से भावान्तरित होकर विवेकानन्द बन गये।

श्री रामकृष्ण परमहंस का व्यक्तित्व इस अर्थ में विलक्षण था कि धर्म को उन्होंने कभी भी उपदेश का विषय नहीं बनाया अपितु वह उनके पदक्षेप से प्रतिध्वनित होता था। उनका हँसना-रोना, डाँटना-दुलारना, उठना-बैठना, चलना-फिरना, प्रसन्न और कुपित होना आदि सभी, कुछ इस तरह का था कि उससे उनकी हृदयस्थ उदारता, करुणा, आत्मीयता, दृढ़ता, सहिष्णुता, सहजता, सजगता और सक्रियता आदि व्यक्त होकर जिज्ञासुओं को धर्म के वास्तविक रूप से परिचित करा देते थे। वस्तुत: धर्म-धर्म चिल्लाने से या मोटी-मोटी पोथियाँ रचने से, न तो धर्म का अर्थ खुलता है और न वह किसी की समझ में आता है क्योंकि वह अपने मौलिक रूप में अनुभूति की, आत्म-साक्षात्कार

की वस्तु है। रामकृष्ण परमहंस धर्म की इसी दिव्य अनुभूति की प्रत्यक्ष-प्रतिमा थे।

ऐसे महापुरुष के स्नेहाशीष की छाया में विवेकानन्द की अन्तर्दृष्टि को जो रूप मिला उसमें उन तमाम तत्त्वों की उपस्थिति बीज रूप में थी जिनका श्रीरामकृष्ण परमहंस की धर्म-दृष्टि के साथ प्रकृत सम्बन्ध था। कहते हैं कि पारस रूपी गुरु का संसर्ग शिष्य को लोहे से स्वर्ण में रूपान्तरित कर देता है किन्तु श्री रामकृष्ण ऐसे अपूर्व गुरु थे जिन्होंने विवेकानन्द को आत्मवत् अर्थात् पारस ही बना दिया।

इस प्रकार, स्वामी विवेकानन्द की जीवन और जगद्विषयक दृष्टि ने जो रूप-ग्रहण किया उसमें वैदिक सनातन परम्परा के सर्वोत्तम मन्तव्य सहज ही विद्यमान थे। उनका अनुभव था कि अखिल विश्व-ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी है सर्वत्र परमात्मा अंश रूप से विद्यमान हैं। जगत् उन्हीं निर्गुण-निराकार की सगुण-साकार मूर्ति है, अत: जगत् के दुखी जीवों की सेवा ही सच्ची नारायण सेवा है। परमात्मा का अंश होने के कारण आत्मा सर्वशक्तिमान और इसीलिए प्रभवत्ता का स्रोत है। केवल अपने मोक्ष के लिए संसार का त्याग कर निर्जन वन- कन्दराओं में तपस्या करना शुद्ध स्वार्थ-साधना है। असली मोक्ष तो आत्मस्थ सद्‌गुणों का परम विकास करते हुए संसार के दीन-दुखियों की सेवा में जीवन को समर्पित कर देना है। ईश्वराराधन के सभी मार्ग विभिन्न प्रस्थान होने पर भी एक ही लक्ष्य तक पहुँचाने वाले हैं और सत्य धर्म वही है जो अन्य सभी धर्मों का अविरोधी हो। स्वामी जी ने पुरुषार्थ का जो अर्थ ग्रहण किया उसके अनुसार सच्चा पुरुषार्थ वही है जो कर्त्ता-पुरुष को सार्थकता प्रदान करे - 'पुरुषै अर्थ्यते इति पुरुषार्थ:।' जिस तरह संन्यास उनके लिए विजन-कन्दराओं में बैठकर तपस्या करना नहीं था - वैसे ही वे धर्म को भी जीवन का लक्ष्य नहीं मानते थे। उनकी दृष्टि में मानवीय जीवन का परम लक्ष्य था वह परमात्मा जिसे गीता में - यो बुद्धेः परतस्तु स: अर्थात् जो बुद्धि से परे है - ऐसा कहा गया है। धर्म उसकी प्राप्ति का साधन भर है। वस्तुत: स्वामी जी की मनुष्य की आन्तरिक शक्ति में अविचल आस्था थी। निम्न श्लोक वे प्राय: गुनगुनाया करते थे -

किं नाम रोदिषि सखे त्वयि सर्वशक्तिः
आमंर्त्यस्य भगवन् भगवद्स्वरूप।
त्रैलोक्यमेतखिलं तव पादमूले
आत्मैव हि प्रभवते न जडः कदाचित्।।

> शिक्षा की शक्ति से समाज परिवर्तन के लक्ष्य किस सीमा तक हस्तगत किये जा सकते हैं, यह मैकाले के संकल्पों और प्रयोगों के परिणाम के रूप में इतिहास के पृष्ठों में सुरक्षित हैं। यह ठीक है कि मैकाले के हित भारतीय प्रतिभा और विचार-प्रणालियों के घूसरित होने में निहित थे, और उनसे वैसे परिणाम भी निकले। किन्तु, भारतीय समाज के पुनर्निर्माण के लिए शिक्षा के स्वरूप की जैसी रूपरेखा स्वामी विवेकानन्द की अन्तर्दृष्टि से प्रस्फुटित हुई, वह हमें वर्तमान दुरवस्था से उबारकर पुनः तेजोद्दीप्त बना सकती है, इसमें भी क्या कोई संदेह?

कहने की आवश्यकता नहीं है कि स्वामी जी की जीवन और जगद्विषयक दृष्टि के जिन घटकों की चर्चा ऊपर की पंक्तियों में है - वे सब उनकी शिक्षा-सम्बन्धिनी दृष्टि में भी अन्तर्भुक्त रहे हैं। किन्तु उनके शिक्षा दर्शन का बीज-सूत्र है - 'आत्मैव हि प्रभवते न जड: कदाचित्' अर्थात् सारे ज्ञान का स्रोत आत्मा है शिक्षा उसके साक्षात्कार का साधन भर है। इसीलिए उनकी मान्यता थी कि ''ज्ञान मनुष्य की आत्मा का स्वभाव-सिद्ध गुण है। मनुष्य जो कुछ जानता या सीखता है - वह सब एक प्रकार से वस्तु के आविष्कृत होने की प्रक्रिया है और इस आविष्कार का अर्थ है - मनुष्य द्वारा अपनी अनन्त ज्ञान-स्वरूप आत्मा के ऊपर से आवरण को हटा लेना।'' इस सम्बन्ध में स्वामी जी ने न्यूटन द्वारा गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त को आविष्कृत किये जाने का उदाहरण प्रस्तुत किया है। उनका कहना है कि सेब तो अनन्त काल से पृथ्वी पर गिर रहे थे और इस तरह की घटनाओं के द्रष्टाओं की संख्या भी कम न रही होगी किन्तु पेड़ से टूटकर पृथ्वी पर गिरते हुए सेब को देखकर जो बात न्यूटन को सूझी उसने उनके अन्त:करण से जैसे एक आवरण को हटा दिया। न्यूटन ने इस नयी सूझ को अपने मन में पड़ी विचार की पुरानी कड़ियों के साथ एक नये क्रम में व्यवस्थित किया और विचार की एक नयी कड़ी को बनते देखा जिसे 'गुरुत्वाकर्षण' का सिद्धान्त कहा गया।

स्वामी विवेकानन्द अपने शिक्षा-दर्शन के आधार को स्पष्ट करते हुए एक स्थान पर कहते हैं -

''मनुष्य की आत्मा में अनन्त शक्ति निहित है, चाहे वह इसे जानता हो, या न जानता हो। वस्तुत: समस्त लौकिक या

आध्यात्मिक ज्ञान आवृत्त अवस्था में मनुष्य के मन में ही पड़ा रहता है। मनुष्य की आत्मा ही ज्ञान का मूल स्रोत है, बाहरी संसार तो एक सुझाव; एक प्रेरक मात्र है।'' उनका अभिमत है कि ''गुरु के सुझाव या व्याख्यान को कोई भी शिष्य अपनी आत्मा की जागृति के अनुपात में स्वयं ही सीखता है।'' दैनिक व्यवहार के अनुभव से हम सब भी यह जानते हैं कि किसी भी व्याख्यान को सभी श्रोता न तो एक जैसा सुनते हैं और न ही समझते हैं।

इस बात को और स्पष्ट करते हुए उन्होंने आगे कहा कि जैसे कोई पौधा अपनी प्रकृति से विकास करता है, बढ़ता है, ठीक वैसे ही कोई बालक भी संसार में अपनी प्रकृति से सीखता है। माता-पिता उसके इस सीखने की प्रक्रिया में सहायक भर, अर्थात् उसके प्रकृत विकास के मार्ग की बाधा हटाने वाले हैं जिससे उस बालक का अन्तर्हित ज्ञान स्वाभाविक रूप में प्रकट हो सके। वे स्पष्ट करते हैं कि ''यह सब कार्य ठीक वैसा ही है जैसे किसी किसान द्वारा हलचलाकर धरती को अंकुरण के योग्य बनाना और खाद-पानी आदि की व्यवस्था करना।'' स्वामी जी का मत है कि माता-पिता की भूमिका इसी सीमा तक है।

इसी तरह शिक्षा के एक अन्य महत्त्वपूर्ण घटक शिक्षक की भूमिका के बारे में उनका विचार है कि उसे केवल इतना भर करना है कि बालक अपनी ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के उचित उपयोग के लिए बुद्धि का प्रयोग करना सीख ले, बाकी सब तो वह स्वयं ही कर लेगा। उनका सुस्पष्ट मत है कि ''अध्यापकों द्वारा ठोक-पीटकर बच्चों को शिक्षित करने की जो प्रणाली है, उसे एक दम प्रतिबन्धित कर देना चाहिए।''

बच्चों की अन्तश्चेतना में आत्मविकास की जो अनन्त संभावनाएँ विद्यमान रहती हैं उन्हें भ्रष्ट करने में माता-पिता की कार्यशैली भी कारण बनती है। बालक के जरा सा बड़ा होते ही, वह क्या पढ़े ? यह सोचना माता-पिता अपना परम धर्म समझते हैं। यहाँ तक तो ठीक है, किन्तु अध्ययन की दिशा के इस निर्धारण में बालक की प्रकृति का जिस धैर्य के साथ और जैसा सूक्ष्म पर्यालोचन किया जाना चाहिए, अधिकांश माता-पिता के पास न तो वह धैर्य ही होता है और न वैसी पर्यालोचन क्षमता। परिणाम, माता-पिता के इस अनुचित दबाब के कारण बालकों को आत्मविकास का स्वतंत्र अवसर ही नहीं मिल पाता।

स्वामी विवेकानन्द जी का इस सम्बन्ध में स्पष्ट सोच यह है कि ''प्रत्येक बालक में ऐसी असंख्य प्रवृत्तियाँ होती हैं जिनके स्वतंत्र-विकास में नयी सूझ, नये आविष्कार के अनावृत होने की संभावना निहित रहती है। माता-पिता का कथित अनुशासन इन प्रवृत्तियों को प्राय: नष्ट कर डालता है।'' स्वामी जी का विचार है कि बच्चों की प्रवृत्ति को पहचानकर उन्हें योग्य दिशा में बढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। यदि ऐसा होगा तो बच्चे समय पाकर अवश्य ही उन्नति करेंगे।

सामान्यत: शिक्षा की दो प्रविधियाँ मानी जाती रही हैं - एक अभ्यास के द्वारा सीखना और दूसरी विमर्श के द्वारा विषय को आत्मसात् करना। आजकल हमारे विद्यालयों/महाविद्यालयों में प्रथम प्रविधि को ही बहुलता से अपनाया जा रहा है। पाठ्यक्रम ज्ञान की सीमा बन गया है। उससे बाहर बच्चों द्वारा कुछ भी पढ़ा जाना न तो माता-पिता को पसंद आता है, और न पाठ्यक्रमेतर प्रश्नों के उत्तर देना अध्यापकों को प्रिय लगता है, चाहे उन प्रश्नों का सीधा सम्बन्ध पाठ्य विषय से ही क्यों न हो। अभिनन्दनों के सारे तिलक और तालियाँ उन प्राप्तांकों पर न्यौछावर हैं जिनके पीछे मुख्यत: बालकों की केवल रटने की शक्ति क्रियाशील है और विषयवस्तु को आत्मसात् करने के संकल्प जहाँ सिरे से

गायब हैं। इसी तरह, सामान्य ज्ञान की जैसी अपेक्षा विद्यार्थियों से की जा रही है उसने विद्यार्थियों के मस्तिष्क को अनेकविध जानकारियों का गोदाम जैसा बना दिया है। प्रकृत-प्रतिभा इस दुष्चक्र में फँसकर उपेक्षित और अनादृत अवस्था में भटकने को विवश है।

इस दुरवस्था के प्राथमिक लक्षण विवेकानन्द के सामने थे और उसके दूरगामी दुष्परिणामों को उस प्रज्ञा-पुरुष की अन्तर्दृष्टि निर्भ्रान्त रूप में देख रही थी। उन्होंने विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए सावधान किया कि ''शिक्षा विविध जानकारियों का ढेर नहीं है जिसे तुम्हारे मस्तिष्क में ठूँस दिया गया है और जो आत्मसात् हुए बिना वहाँ आजन्म पड़ा रहकर गड़-बड़ मचाया करेगा। शिक्षा उन विचारों को अनुभूति में बदल लेने का नाम है जो जीवन-निर्माण, मनुष्य-निर्माण और चरित्र-निर्माण में सहायक हो।''

स्वामी जी स्वाधीनता को विकास की अन्यतम शर्त मानते थे। उनकी दृष्टि में, स्वाधीनता आत्मगत प्रवृत्तियों के निर्बाध विकास के अवसर की अनन्त-उपलब्धता का दूसरा नाम था। इसीलिए उन्होंने विद्यार्थियों के सामने यह प्रश्न रखा।

'विदेशी भाषा में दूसरे के विचारों को रटकर, अपने मस्तिष्क में उन्हें ठूँसकर और विश्वविद्यालयों की कुछ पदवियाँ प्राप्त करके तुम अपने को शिक्षित समझते हो ? क्या यही शिक्षा है?' वे पुनः प्रश्न करते हैं – ''तुम्हारी इस शिक्षा का आखिर उद्देश्य क्या है ? या तो मुंशीगीरी मिलना या वकील हो जाना, या अधिक से अधिक डिप्टी मैजिस्ट्रेट बन जाना, जो मुंशीगिरी का ही दूसरा रूप है। बस यही न? इससे तुमको या तुम्हारे देश को क्या लाभ होगा? आज देश के सामने जो चुनौतियाँ हैं, जो अभाव हैं, क्या तुम्हारी शिक्षा उन अभावों की पूर्ति करेगी?''

स्वामी जी की दृष्टि में शिक्षा वह है जो जन-समुदाय को जीवन-संग्राम में विजयी होने योग्य बनाये, उनकी चारित्र्यशक्ति का विकास करे। उनमें जीव मात्र के प्रति दया का भाव और अन्यायियों के विरुद्ध सिंह का सा साहस पैदा करे। जो शिक्षा ऐसा करने में असमर्थ हो, उसे शिक्षा कहना व्यर्थ है, ऐसा उनका दृढ़ मत था।

आज जब हम स्वामी जी के शिक्षा-सम्बन्धी दृष्टिकोण को सम-सामयिक संदर्भ में परखते हैं तो लगता है कि कालगत आयाम के बावजूद उसकी प्रासंगिकता किसी भी प्रकार कम नहीं हुई है। आज सत्ता के शिखरों से लेकर गाँव-गाँव में बसे आमजन तक सर्वत्र चरित्र का संकट अपनी चरम सीमा पर है। भ्रष्टाचार की कर्मनाशा ने प्रायः सभी को अपने भँवर में ले लिया है। सदाचार अपदस्थ है और राष्ट्रीय-चरित्र संज्ञा-शून्य। युवा पीढ़ी आदर्श के अभाव में दिशाहीन होकर भटक रही है। मदिरा और मौज उन पर कब्जा कर लेने को आतुर हैं। ऐसे में उस चरित्र-बल का विकास होना असंभव है जो अनय और अत्याचार के विरुद्ध सिर तान कर खड़ा होने को प्रेरित करता है, स्वदेशानुराग को पुष्ट करता है, दीन-दुखियों की सेवा करने में जीवन को धन्य मानता है, राष्ट्र के निर्माण में सहभागी बनने का उत्साह देता है।

शिक्षा की शक्ति से समाज परिवर्तन के लक्ष्य किस सीमा तक हस्तगत किये जा सकते हैं, यह मैकाले के संकल्पों और प्रयोगों के परिणाम के रूप में इतिहास के पृष्ठों में सुरक्षित है। यह ठीक है कि मैकाले के हित भारतीय प्रतिभा और विचार-प्रणालियों के घूसरित होने में निहित थे, और उनसे वैसे परिणाम भी निकले। किन्तु, भारतीय समाज के पुनर्निर्माण के लिए शिक्षा के स्वरूप की जैसी रूपरेखा स्वामी विवेकानन्द की अन्तर्दृष्टि से प्रस्फुटित हुई, वह हमें वर्तमान दुरवस्था से उबारकर पुनः तेजोद्दीप्त बना सकती है, इसमें भी क्या कोई संदेह? ❑

प्राथमिक कक्षाओं में प्रार्थना सभा व बाल सभाओं का महत्व

संदीप पारीक
अध्यापक,
रा.उ.प्रा.वि., सीमावत्या
(पावटा), जयपुर (राज.)

प्रार्थना सभा प्राथमिक कक्षाओं में एक महत्त्वपूर्ण और अद्भुत गतिविधि है जो छात्रों को आध्यात्मिक, सामाजिक, और नैतिक मौलिकताओं के साथ जोड़ने का एक स्थान प्रदान करती है। यह सभा छात्रों को नैतिक मूल्यों, सामूहिक एकता, और शांति की भावना विकसित करने का अवसर प्रदान करती है जो उनके व्यक्तिगत और सामाजिक विकास को सहारा देता है।

1. आध्यात्मिक विकास

प्रार्थना सभा छात्रों को आध्यात्मिकता की दिशा में मार्गदर्शन करती है। इसके माध्यम से, छात्र अपने आध्यात्मिक मूल्यों को समझते हैं और उन्हें अपने दैहिक और मानसिक स्वास्थ्य के साथ जोड़ने का अवसर मिलता है।

2. सामूहिक एकता और सदभाव

प्रार्थना सभा से छात्रों में सामूहिक एकता और सदभाव की भावना पैदा होती है। इसके द्वारा, वे एक साथ प्रार्थना करके समर्थन और समझदारी का एक वातावरण बनाते हैं।

3. नैतिक शिक्षा

प्रार्थना सभा छात्रों को नैतिक मूल्यों, सजीव शैली, और आदर्श जीवन के प्रति उत्साहित करती है। इसके माध्यम से, छात्र ठीक और गलत के बीच विवेक का विकास करते हैं।

4. सजगता और ध्यान

प्रार्थना सभा छात्रों को सजग और ध्यानी बनाती है। इसमें शामिल होने से, वे अपने विचारों को स्वस्थ रूप से रखते हैं और ध्यान में रहकर आत्मविकास की दिशा में काम करते हैं।

5. सहयोग और एकजुटता

प्रार्थना सभा से छात्रों को सहयोग और एकजुटता की भावना में संबोधित किया जाता है। इससे उनमें समृद्धि की भावना पैदा होती है और वे एक दूसरे की मदद करने के लिए प्रेरित होते हैं।

6. अच्छे आचरण की शिक्षा

प्रार्थना सभा छात्रों को अच्छे आचरण और शिष्टाचार की महत्त्वपूर्णता सिखाती है। इसमें भाग लेने से, वे सभी के प्रति आदर और समझदारी के साथ व्यवहार करना सीखते हैं।

7. शांति और संरचना

प्रार्थना सभा छात्रों को शांति की भावना से संपर्क कराती हैं और विद्यार्थी उसमें अपनी बातें दूसरों के सामने रखने का अभ्यास करते हैं। और उन्हें व्यक्ति और समाज के साथ संरचित रहने के लिए प्रेरित करती है।

8. स्वास्थ्य और ऊर्जा

प्रार्थना सभा से छात्रों को ऊर्जा और सकारात्मकता का अहसास होता है। इससे उनका मानसिक स्वास्थ्य बना रहता है और वे प्रतिस्पर्धा और जीवन की चुनौतियों का सामना करने में सक्षम होते हैं।

9. अभिव्यक्ति कौशल

प्रार्थना सभा छात्रों को शिक्षायी मौद्रिका का अभ्यास करने का मौका देती है, जिससे उनकी भाषण और संवाद क्षमताएँ सुधरती हैं। यह उन्हें सामूहिक रूप से अभिवादन करने और समर्पण से बातचीत करने का अवसर देती है।

10. विद्यार्थी नेतृत्व क्षमता

प्रार्थना सभा विद्यार्थियों में नेतृत्व की क्षमता पैदा करती है। छात्र इस सभा में शामिल होकर नेतृत्व कौशलों का विकास करते हैं और दूसरों को प्रेरित करने का मौका प्राप्त करते हैं।

11. समाज सेवा और दान

प्रार्थना सभा छात्रों को समाज सेवा और दान की भावना से संपर्क कराती है। छात्र इस सभा के माध्यम से अन्यों की मदद करने के लिए प्रेरित होते हैं और समर्पित नागरिक बनने का संकल्प करते हैं।

12. सामाजिक साक्षरता

प्रार्थना सभा छात्रों को सामाजिक साक्षरता बढ़ाने का एक सुझाव प्रदान करती है। इसमें शामिल होकर, वे विभिन्न समस्याओं के सामाजिक संबंधों को समझने का अवसर प्राप्त करते हैं और सामाजिक जगह में सही रूप से भाग लेते हैं।

प्राथमिक कक्षाओं में बाल सभाओं का महत्त्व

प्राथमिक कक्षाओं में बाल सभाएँ एक महत्वपूर्ण और अद्वितीय शैक्षिक क्रियाकलाप हैं जो छात्रों को सामाजिक और मानवाधिकारिक मूल्यों की समझ और साझा करने का मौका प्रदान करती हैं। इन सभाओं के माध्यम से, बच्चे नैतिकता, साहित्यिक रूप से, और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सीखते हैं और उनके विकास में सहारा मिलता है।

1. सामाजिक साक्षरता का बढ़ता संचार

बाल सभाएँ छात्रों को सामाजिक साक्षरता का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत प्रदान करती है। इन सभाओं में, वे आपसी समझदारी और सहयोग का अवसर प्राप्त करते हैं, जिससे उनका संबंध मजबूत होता है।

2. नैतिक मूल्यों की शिक्षा

सभाओं में, छात्रों को नैतिकता, ईमानदारी, और सहानुभूति की महत्ता सिखाई जाती है। इससे उनमें ठोस मूल्यांकन की क्षमता बढ़ती है और वे सही और गलत के बीच विवेकपूर्ण निर्णय करने में सक्षम होते हैं।

प्राथमिक कक्षाओं में प्रार्थना सभा व बाल सभा छात्रों को समृद्धि, नैतिकता, और सामाजिक जिम्मेदारी की भावना से युक्त करके उन्हें सजग, सद्भावपूर्ण, और सशक्त नागरिक बनाती है। यह उन्हें अपने आत्मविकास में सहारा प्रदान करती है और उन्हें सफल और संतुलित जीवन जीने के लिए तैयार करती है।

3. सहयोग और टीम भावना

बाल सभाएँ छात्रों को सहयोग और टीम बिल्डिंग का मौका प्रदान करती हैं। इन सभाओं में, वे एक साथ मिलकर समस्याओं का समाधान करते हैं और टीमवर्क करने का अभ्यास करते हैं।

4. साहित्यिक और भाषिक विकास

सभाओं में, छात्रों को साहित्यिक और भाषिक विकास का अभ्यास करने का अवसर मिलता है। इससे उनके भाषण और सुनने के कौशल मजबूत होते हैं और वे अच्छे साहित्यिक स्वरूप में अपने विचार व्यक्त करने का अभ्यास करते हैं।

5. सामाजिक जिम्मेदारी

सभाओं में, छात्र अपनी सामाजिक जिम्मेदारियों को समझते हैं और उन्हें सही तरीके से निभाने का अभ्यास करते हैं। इससे उनमें सामाजिक जागरूकता और सामाजिक सहयोग की भावना बढ़ती है।

6. स्वतंत्रता और नेतृत्व

बाल सभाएँ छात्रों में स्वतंत्रता और नेतृत्व की भावना को बढ़ाती हैं। इन सभाओं में, वे अपने विचारों को स्पष्टता के साथ व्यक्त करने का साहस दिखता है।

7. वैज्ञानिक दृष्टिकोण

बाल सभाएँ छात्रों को विज्ञानिक दृष्टिकोण बनाए रखने में मदद करती हैं। इन सभाओं में, वे प्रश्न पूछने, तर्क बनाए रखने, और आत्मविश्वासी रूप से विचार करने का अभ्यास करते हैं, जो उनकी शैक्षिक और मानवाधिकारिक दृष्टि को सुदृढ़ करता है।

8. कला और सांस्कृतिक विकास

बाल सभाएँ छात्रों को कला और सांस्कृतिक विकास में सहारा प्रदान करती हैं। इन सभाओं में, वे विभिन्न सांस्कृतिक गतिविधियों में हिस्सा लेते हैं और अपनी रचनात्मकता को साझा करने का अभ्यास करते हैं।

9. सहायक संगठनात्मक कौशल

बाल सभाएँ बच्चों को सहायक संगठनात्मक कौशल बढ़ाने में सहारा प्रदान करती हैं। इन सभाओं में, छात्र विभिन्न गतिविधियों को संगठित रूप से चलाने का अभ्यास करते हैं, जिससे उनकी योजना बनाने और अपने कार्यों का प्रबंधन करने की क्षमता बढ़ती है।

10. सजीव बनाए रखने की भावना

बाल सभाएँ छात्रों में सजीव बनाए रखने की भावना पैदा करती है। इन सभाओं में, वे अपने आसपास के वातावरण के प्रति जागरूक होते हैं और स्वस्थ और सजीव जीवन जीने का मार्गदर्शन करते हैं।

11. समृद्धि का स्रोत

बाल सभाएँ छात्रों को समृद्धि की भावना से परिचित कराती हैं। इन सभाओं में, छात्र अपनी सीमाओं को पार करने, नए क्षेत्रों में अपनी क्षमताओं को पहचानने, और अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रेरित होते हैं।

इस प्रकार प्राथमिक कक्षाओं में प्रार्थना सभा व बाल सभा छात्रों को समृद्धि, नैतिकता, और सामाजिक जिम्मेदारी की भावना से युक्त करके उन्हें सजग, सद्भावपूर्ण, और सशक्त नागरिक बनाती है। यह उन्हें अपने आत्मविकास में सहारा प्रदान करती है और उन्हें सफल और संतुलित जीवन जीने के लिए तैयार करती है। ❑

ग्रामीण बाल खेलों की आवश्यकता

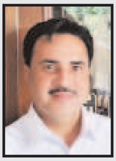

रामविलास जांगिड़
प्रधानाचार्य,
रा.उ.मा.वि. छातड़ी
अजमेर (राज.)

कड़ो'र काचरो मीठी माला।
आओ' र छोरा छोरी खेलबा वाला।
आकड़ा की लकड़ी धोकड़ा को बीज।
आओ' र छोरा छोरी खेलबा की चीज।

कोई भी बालक ऐसी आवाज राग में गाया नहीं कि बच्चे इकट्ठे होने लगते। देखते ही देखते मौहल्ले भर के बच्चे एक मैदान में खड़े हो जाते। पूरे गाँव के बच्चे अपने-अपने मौहल्लों में खेलने का क्रम चालू कर देते। फिर इनका खेलना देर रात तक जारी रहता।

सफेद चांदनी रात में बच्चे अपनी सृजनशीलता को ऊँचाइयों तक ले जाते। देर रात तक चलने वाले इन खेलों में कभी-कभी युवा, बुजुर्ग भी भाग लेने लगते। वे भी इनमें हिस्सा लेते हुए बचपन की यादों में खो जाते। वे बचपन के अतुलित आनंद को फिर से प्राप्त करने का लुत्फ उठाने लगते।

कई पीढ़ियों से चलित और फलित इन लोक खेलों की सबसे बड़ी विशेषता है इनका अनौपचारिक होना। इनका सहज होना। इन बाल लोक खेलों में सहजता होने से बच्चे अपने प्रतिकूल इनमें कुछ भी जोड़ बाकी कर सकते हैं। इन खेलों में नहीं के बराबर सामग्री होना इनका महत्त्वपूर्ण पहलू है। इस आर्थिक युग में जहाँ मूलभूत सुविधाएँ जुटाने में ग्रामीण जनों को दिक्कत होती है, वे इन खेलों के लिए अपने बच्चों को सामग्री कहाँ मुहैया करा पाते हैं। तब ये खेल नाम मात्र की खेल सामग्री से बच्चों को हँसने-कूदने में और खेलने में मदद करते हैं। वे बच्चों के सच्चे मित्र बन जाते हैं।

कहीं कोई खेल शुरू हुआ तो खिलाने वाले के रूप में 'अम्पायर' की समस्या नहीं होती। कोई भी एक खिलाड़ी आम सहमति से अथवा किसी भी मामूली चयन पद्धति से 'अम्पायर'/निर्णायक बन जाता है। यहाँ निर्णायक बन जाने के बाद भी निर्णय के सारे अधिकार केवल निर्णायक को नहीं जाते।

सारे अधिकार समस्त खिलाड़ी बच्चों के पास समान रूप से वितरित रहते हैं। किसी भी विवादित मुद्दे पर सब मिलकर उस विवाद को सुलझाने की कोशिश करते हैं। इस प्रकार आम राय से वह मुद्दा सुलझाया जाता है। कई बार ऐसा हुआ है कि विवादित मुद्दा हल न हो सका। तो कोई बात नहीं। कोई मतभेद नहीं। कोई मनभेद नहीं। खेल या तो नए सिरे से शुरू हो जाता है या फिर कोई नया खेल!

इस प्रकार इन खेलों में देखा गया है कि बच्चों के लिए खेल का परिणाम ज्यादा महत्त्वपूर्ण नहीं है। कोई जीतो, कोई हारो। परन्तु खेल में आनंद आना चाहिए। आनंद तभी आता है जब कि सभी खिलाड़ियों में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा हो। सभी खिलाड़ी खेल की प्रक्रिया में मजा लेते। खेल ही खेल में वे अपने बड़े साथियों से सीखते हैं। सिखाते हैं- कुछ नया, कुछ अनुभवजनित। वह सीखते हैं जो उन्हें बँधी-बँधाई कक्षा में चुपचाप शिक्षक से सीखना पड़ता है।

प्राय: सीखते समय बच्चे शिक्षक से डरकर उनसे अपनी अंतरंग बातें नहीं कह सकते। न ही वे भययुक्त वातावरण में सीख सकते। तब यह देखा गया कि बच्चे अगर अपने से कुछ बड़े साथियों से सीखें तो वे सहज और सरल गति से जल्दी ही सीख पाएंगे। डांटते फटकारते हुए और कक्षा की बाधा बीच में उपस्थित करते हुए, बात-बात की परीक्षा लेते हुए सिखाना, क्या बालकों को अच्छा लगता है?

इससे परे इन खेलों में बालक स्वतंत्र होकर अपने मनचाहे तरीके से अपने जीवन के प्रत्यय सीखता चला जाता है। कहीं वह खुद के अनुभव से सीखता है तो कहीं अपने साथी बालक के अनुभव से। कहीं वह करके सीखता है, तो कहीं वह देखकर। कभी-कभी वह अचानक सृजन के सुख का आनंद पाता है, तो कभी लगातार चल रही प्रक्रिया से। हम कक्षा कक्ष में बालक को सक्रिय अधिगम, आनंददायी शिक्षण, बाल केन्द्रित शिक्षण और... और कहकर बालक को स्वतंत्र रूप में सीखने के आनंद को प्राप्त करने की हिमाकत करते हैं। लेकिन यह सब एक कक्षा कक्ष में संभव नहीं है। यह सब बड़ों के द्वारा बनाए गए भारी भरकम खेलों में नहीं है। यह सब किसी आयातित खेल से भी संभव नहीं है। यह सब संभव है, सरल बाल लोक खेलों से।

कई खेलों में नियम कायदे इतने रूढ़ होते हैं कि इनसे छेड़खानी करने की सख्त मनाई होती है। विवाद निपटाने के लिए किसी नियम विशेषज्ञ की राय लेनी पड़ती है। लेकिन ऐसा सब कुछ इन बाल लोक खेलों में नहीं है। किसी एक ही गाँव में एक ही खेल दो मौहल्लों में अलग-अलग नियम के द्वारा खेले जा सकते हैं। इतना ही नहीं किसी एक ही खेल के नियम कायदे एक ही खिलाड़ी दल के द्वारा दूसरी बार खेलने पर नियम बदल दिए जाते हैं। यह सब ऐसा नहीं है कि खेल में बार-बार नियम बदलने का नियम हो। ऐसा सब कुछ तात्कालिक स्थिति को ध्यान में रखकर किया जाता है। ऐसा कुछ भी नियम जिससे खेलना जारी रह सके और उस खेल में सबको आनंद आ जाए। ऐसी व्यावहारिकता फिर कहाँ मिल सकेगी। जो बच्चों को भावी जीवन तैयार करने के लिए मददगार हो।

गाँव/मौहल्ले के सभी बच्चे मिलकर सीखें। वे मिलकर किसी समस्या का समाधान करें। योग्य व्यक्ति को नेतृत्व का अवसर मिले, और सहभागी बनकर उसका अनुसरण करे। कई-कई बातें भरी पड़ी हैं इन बाल-लोक खेलों में। जहाँ एक ओर टी.वी. संस्कृति ने बच्चों को अपने घरों में कैद कर लिया। इन दिनों सभी बच्चे मोबाइल की गिरफ्त में हैं, जहाँ उनका शारीरिक, मानसिक और सृजनात्मक विकास नहीं हो पाता है। बच्चों को मोबाइल ने गहरे-गहरे कैद कर लिया है। जहाँ उनके लिए कृत्रिम खेल बनाए जा रहे हैं। जहाँ इनकी सृजनशीलता के लिए सारे दरवाजे बंद किए जा रहे हैं। उनकी सम्प्रेषणीयता को रोका जा रहा है। वहीं ये खेल उन बच्चों की शारीरिक जकड़न को दूर करने में अहम् भूमिका निबाह सकते हैं। ये खेल सहज तरीके से बालकों के सर्वांगीण विकास के रास्ते खोलते हैं। ये बालकों में बौद्धिक जकड़न को दूर कर सकने में सक्षम हैं। मानसिक विकास के लिए बालकों को एक नई दिशा देते हैं। कई पीढ़ियों से मिले इन बाल लोक खेलों की महत्ता को शिक्षा में एक महत्त्वपूर्ण स्थान देते हुए अपनाना श्रेयस्कर ही होगा। ❑

बच्चों को मोबाइल ने गहरे-गहरे कैद कर लिया है। जहाँ उनके लिए कृत्रिम खेल बनाए जा रहे हैं। जहाँ इनकी सृजनशीलता के लिए सारे दरवाजे बंद किए जा रहे हैं। उनकी सम्प्रेषणीयता को रोका जा रहा है। वहीं ये खेल उन बच्चों की शारीरिक जकड़न को दूर करने में अहम् भूमिका निबाह सकते हैं। ये खेल सहज तरीके से बालकों के सर्वांगीण विकास के रास्ते खोलते हैं। ये बालकों में बौद्धिक जकड़न को दूर कर सकने में सक्षम हैं। मानसिक विकास के लिए बालकों को एक नई दिशा देते हैं। कई पीढ़ियों से मिले इन बाल लोक खेलों की महत्ता को शिक्षा में एक महत्त्वपूर्ण स्थान देते हुए अपनाना श्रेयस्कर ही होगा।

वर्तमान की आवश्यकता है कि शिक्षा बोझ रहित हो तथा विद्यालय आनन्दालय बनें। विद्यालय का वातावरण भयमुक्त होना चाहिए ताकि छात्र एक स्वतंत्र वातावरण में पूर्ण रूप से विकास कर सकें। भयमुक्त एवं आन्नदमयी वातावरण में शिक्षण कार्य अधिक सुगमता से होता है। तथा इस प्रकिया में विद्यार्थियों का अधिगम स्थाई होता है। 'करके सीखने' तथा खेल खेल में सीखने से छात्रों का विषय के प्रति लगाव बना रहता है।

प्राथमिक शिक्षा की आनंददायी शिक्षण प्रविधियाँ

आशा सुमन

राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित शिक्षिका, राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय, खरखड़ा, राजगढ़, अलवर (राज.)

एनइपी 2020 के अनुसार शिक्षण प्रक्रिया बाल केंद्रित होनी चाहिए। बालक की योग्यता, क्षमता व रुचि के अनुसार शिक्षण किया जाना चाहिए। यहाँ यह भी जानना जरूरी है कि शिक्षण के लिए बच्चा नहीं बल्कि बच्चे के लिए शिक्षण है। बच्चा स्वयं खेल-खेल में सीख सके इसके लिए सीखने की प्रक्रिया रुचिकर एवं आनंददायी वातावरण में होनी चाहिए। बालक का सर्वांगीण विकास शिक्षण की महत्त्वपूर्ण धुरी है। हमें प्रयास करना चाहिए कि बालक पुस्तक एवं बस्ते से बाहर निकलकर अपने दैनिक जीवन में व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर सके। खेल-खेल में शिक्षा के माध्यम से हम बालक को बिना पुस्तक एवं बस्ते के सीखने का वातावरण दें। आनंददायी शिक्षण बालक के लिए भय मुक्त वातावरण तैयार करता है जिससे बालक का सर्वांगीण विकास होता है।

प्राथमिक स्तर के विद्यार्थी स्वभावतया कुछ ना कुछ करते रहना चाहते हैं। ऐसे में खेल-खिलौने, कला, नवाचारी व आनंददायी प्रक्रियाओं का शिक्षण प्रक्रिया में महत्त्व बढ़ जाता है, क्योंकि यह विधि मुख्य रूप से बाल केंद्रित तो है ही साथ ही गतिविधि आधारित भी है। आनंददायी शिक्षण में शामिल कला, खेल-खिलौने आधारित प्रविधियों के माध्यम से बच्चे अपने विचारों और भावनाओं को व्यक्त करते हैं, साथ ही खेल के माध्यम से अपने आसपास के संसार को देख वह समझ सकते हैं। इससे बच्चों को अपने सामाजिक संबंधों एवं स्वस्थ आदतों को विकसित करने में सहायता मिलती है।

शिक्षा के क्षेत्र में आज अनूठे प्रयोग हो रहे हैं। इन प्रयोगों का उद्देश्य बच्चों में सीखने की ललक पैदा करना है ताकि वे जिम्मेदार नागरिक बन सकें व देश की प्रगति में अपना योगदान दे सकें।

आनंददायी शिक्षण के उद्देश्य

- बच्चों में स्वयं ज्ञान सृजन करने की क्षमताओं का विकास करना।
- शिक्षा के प्राथमिक स्तर की नींव मजबूत करना।
- सीखने हेतु आनंददायी वातावरण तैयार करना।
- बच्चों में स्वस्थ आदतों का विकास करना।
- भयमुक्त शिक्षा सुनिश्चित करना।
- ड्राइंग पेंटिंग, खेल आदि की विभिन्न कला कौशल विकसित करना।

प्राथमिक शिक्षा की आनंददायी शिक्षण विधियाँ

प्राथमिक शिक्षा छोटे बच्चों की विशेषताओं के आधार पर निश्चित रूप से खेल-विधि से दी जानेवाली शिक्षा है अर्थात् खेल और क्रियाकलाप पर आधारित शिक्षा है, जिनमें निम्न खेल एवं क्रियाकलाप बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं - खेल, बालगीत, कहानी, वार्तालाप, कठपुतली खेल, गुड़िया का खेल, प्रयोग, अभिनय,

प्रकृति में विचरण, संगीत व लयात्मक क्रियाएँ खेल-सामग्री के साथ, संज्ञानात्मक एवं भाषा-संबधी क्रियाएँ, कक्षा के अंदर व बाहर के खेल।

वर्तमान की आवश्यकता है कि शिक्षा बोझ रहित हो तथा विद्यालय आनन्दालय बनें। विद्यालय का वातावरण भयमुक्त होना चाहिए ताकि छात्र एक स्वतंत्र वातावरण में पूर्ण रूप से विकास कर सकें। भयमुक्त एवं आनंदमयी वातावरण में शिक्षण कार्य अधिक सुगमता से होता है। तथा इस प्रकिया में विद्यार्थियों का अधिगम स्थाई होता है। 'करके सीखने' तथा खेल खेल में सीखने से छात्रों का विषय के प्रति लगाव बना रहता है।

आनंददायी शिक्षा हेतु मेरे प्रयोग

कक्षाकक्षीय शिक्षण में नवाचार की संभावनाएँ हमेशा बनी रहती हैं। मैंने विद्यार्थियों की गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करने के उद्देश्य से कुछ नवीन प्रयोग किए जैसे -

खिलौना बैंक की स्थापना - 'पढ़ोगे लिखोगे बनोगे नवाब, खेलोगे कूदोगे तो बनोगे लाजवाब।'

मेरा सरकारी विद्यालय इस कहावत को चरितार्थ करता है जहाँ राजस्थान के सबसे बड़े खिलौना बैंक को राजगढ़ के समीपवर्ती गाँव खरखड़ा के राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय में स्थापित किया गया

है। इस खिलौना बैंक में 500 से अधिक एजुकेशनल खिलौनों व पुस्तकों का संग्रह किया गया है। खिलौना बैंक के कमरे को आकर्षक रूप दिया गया है। यहाँ खिलौना बैंक के साथ एक चिल्ड्रन नॉलेज कॉर्नर भी बनाया गया है। जिसमें किताबें, गेम्स और भी बहुत रोचक खेल सामग्री है। मैंने महसूस किया कि निजी स्कूलों में विद्यार्थियों को खिलौने व कई प्रकार की खेल सुविधाएँ मिलती हैं। दूसरी ओर सरकारी स्कूलों में मूलभूत सुविधाएँ तक नहीं है। बच्चों को शिक्षा व विद्यालय से जोड़ने के लिए तथा मानसिक व बौद्धिक विकास के लिए इस अनूठे खिलौना बैंक की स्थापना की। ये खिलौने बच्चों के विकास में एक बडी भूमिका निभाते हैं। खेल-खेल में बच्चे सपनों के महल बनाते हैं, पढ़ते हैं और पढ़ने के बाद ही बच्चों के चेहरे पर मुस्कुराहट आती है। खेल खेल में आनंददायी शिक्षण इस खिलौना बैंक से संभव हुआ। इस कार्य में अलवर, जयपुर मुंबई के भामाशाहों से सहयोग लिया गया। साथ ही मैंने इन भामाशाहों के सहयोग से अलवर जिले के 25 स्कूलों में भी खिलौना बैंक स्थापित किए।

बालगीतों के माध्यम से शिक्षण

प्राथमिक शिक्षा में बालगीतों और बाल कविताओं के माध्यम से बच्चे बहुत जल्दी सीखते हैं। ये बालगीत सीखने सिखाने का माहौल बनाने में सहायक होते हैं। मैंने शिक्षण के दौरान अनुभव किया कि ये बाल गीत एक ऐसा सशक्त माध्यम हैं, जो बच्चों से जुड़ने के लिए कारगर हैं। इसके साथ ही साथ कठिन से कठिन विषय वस्तु सिखाने के लिए भी बालगीत का उपयोग किया जा सकता है। एक गौर करने वाली बात है कि वह विषय वस्तु जिसे मैंने बालगीतों और कविताओं के माध्यम से सिखाया उसे विद्यार्थी कभी नहीं भूलता।

कठपुतली व गुड़िया का शिक्षण में प्रयोग

कठपुतलियाँ छोटे बच्चों पर जादू की तरह काम करती हैं! शिक्षण कराते हुए मैंने अनुभव किया कि कठपुतली व गुड़िया कक्षाकक्षीय शिक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कठपुतली व गुड़िया का खेल छात्रों में रचनात्मक क्षमताओं को विकसित करने में सहायता करते हैं। मैंने स्वयं कपड़े, कागज , पुराने डिब्बों से कठपुतलियों का निर्माण किया। ये मेरी कठपुतलियाँ गीत गा सकती हैं, कहानियाँ सुना सकती हैं, गिनती कर सकती हैं, शिक्षण में मदद कर सकती हैं और पूरे पाठ्यक्रम की आनंददायी शिक्षा प्रदान कर सकती हैं। वे सुनने और ध्यान विकसित करने, बुनियादी साक्षरता और संख्या ज्ञान कौशल और व्यक्तिगत विकास के लिए एक उत्कृष्ट उपकरण हैं। मैं अठारह वर्षो से शिक्षण में कठपुतलियों का उपयोग कर रही हूँ। जिसके परिणाम सकारात्मक रहे।

कार्टून वीडियो का निर्माण

प्राथमिक शिक्षा में कार्टून बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। शिक्षण को आनंददायक और रुचिकर बनाते हैं। छोटे बच्चे कार्टून देखना बहुत पसंद करते हैं।

कार्टूनों ने विद्यार्थियों के लिए साधारण विषयों को आकर्षक बना दिया है। मैंने लगभग 250 से अधिक कार्टून वीडियो का निर्माण किया। मेरे कक्षाकक्षीय शिक्षण में बच्चे अक्सर कार्टून वीडियो के माध्यम से अध्ययन करते नजर आते हैं। मेरा यह नवाचार बच्चों को बहुत पसंद आता है। ❑

प्रारम्भिक कक्षाओं के शिक्षण में मेरे अनुभूत प्रयोग

श्रीमती इन्दुप्रभा शर्मा

सेवानिवृत्त प्रधानाचार्य
राजस्थान माध्यमिक
शिक्षा विभाग

किसी विद्यालय में प्रधानाचार्य के रूप में कार्य का दायित्व एक स्वर्णिम अवसर है, जब शिक्षाकर्म से जुड़ा व्यक्ति अपने स्वप्नों, विचारों, संकल्पनाओं और योजनाओं को मूर्त रूप देकर उन्हें साकार कर सकता है। विभिन्न विद्यालयों में कार्य के दौरान मुझे ऐसे पर्याप्त अवसर मिले।

इतने वर्षों पश्चात आज इस सम्बन्ध में लिखते हुए मेरी आँखों के सामने छोटी-बड़ी योजनाओं की क्रियान्विति के उन क्षणों, उन विद्यालयों, उन उत्साही विद्यार्थियों एवं उन कुछ समर्पित एवं ऊर्जावान शिक्षकों की स्मृतियाँ चलचित्र की भाँति तैर रही हैं।

बँधे-बँधाए ढर्रे एवं लीक से हटकर किए गए वे कार्य तब भी 'स्वान्तः सुखाय' ही थे और आज उस बारे में लिखते हुए भी एक सन्तोष की अनुभूति हो रही है। वर्ष 2001 से 2008 के मध्य के ये प्रयोग अलग-अलग विद्यालयों के हैं।

उदाहरण स्वरूप कुछ प्रयोग निम्नानुसार हैं -

कक्षा-कक्ष से दूर एक दिन - (मासिक योजना)

मेरे द्वारा यह मासिक योजना कक्षा 6 से 9 के लिए क्रियान्वित की गई। इसे शिक्षक अपनी आवश्यकतानुसार कक्षा 3 से 5 के लिए भी क्रियान्वित कर सकते हैं।

बच्चों के सर्वांगीण विकास हेतु उन्हें कभी-कभी प्रायोगिक शिक्षक, उन्मुक्त वातावरण में स्वयं करके सीखने, पाठ्यक्रम की विषयवस्तु को अपने परिवेश से जोड़ने, सामाजिक दायित्व का बोध कराने, आनन्ददायी शिक्षण, गतिविधि आधारित शिक्षण, खेल-खेल में सीखने, समूह में एक-दूसरे से सीखने (पीयर लर्निंग) का अवसर प्रदान करना आवश्यक है।

आधुनिक शिक्षण विधाओं में इन पर बहुत बल दिया जा रहा है, किन्तु वर्षों पूर्व पारम्परिक शिक्षण पद्धतियों से प्रशिक्षित शिक्षकों, रूढ़िगत विद्यालय परिवेश, संसाधनों एवं शिक्षकों की कमी के चलते यह पूरी तरह संभव नहीं हो पाता था। चूँकि मुझे कुछ वर्षों 'लोकजुम्बिश' एवं 'शिक्षाकर्मी' योजना के अन्तर्गत कार्य का अनुभव था, अतः सीखे गए ज्ञान एवं नवीन शिक्षण विधाओं की क्रियान्विति की इच्छा एवं उद्देश्य लेकर इस योजना की क्रियान्विति की तैयारी हेतु निम्नानुसार प्रयास किए गए-

कक्षावर/विषयवार पाठ्यपुस्तकों से उन स्थलों/बिन्दुओं का चयन किया गया, जिनका प्रयोग द्वारा/खेल द्वारा/ अन्य संस्थाओं में भ्रमण द्वारा/ चर्चा-परिचर्या द्वारा शिक्षण किया जा सकता है।

यदि कोई विषय-वस्तु खेल या प्रयोग द्वारा सिखाई जाती है, तो खेल एवं प्रयोग तथा इससे सम्बन्धित सामग्री की तैयारी/निर्माण/व्यवस्था की गई।

किसी मौसम अथवा अवसर विशेष पर किसी विषयवस्तु पर चर्चा, भ्रमण

अथवा गतिविधि करानी है, तो ऐसी विषयवस्तु को सूचीबद्ध किया गया। यथा- वर्षा ऋतु में वर्षा जल संग्रहण, विविध ऋतुओं में फसलों, सिंचाई, मिट्टी की जानकारी।

इंटीग्रेटेड लर्निंग को ध्यान में रखते हुए कक्षाकक्ष से बाहर किए गए खेल, गतिविधि, प्रयोग, भ्रमण को अन्य विषयों से जोड़ते हुए क्या योजना तैयार की जा सकती है, इस हेतु एकाधिक विषय शिक्षकों द्वारा मिलकर योजना का निर्माण किया गया। यथा- सामाजिक ज्ञान/भूगोल विषय सम्बन्धी की गई गतिविधि पर हिन्दी अथवा अंग्रेजी विषय में संक्षिप्त वर्णन लेखन/भाषण।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कक्षावर/विषयवार मासिक योजना का निर्माण किया गया (कब/किस कक्षा अथवा दो कक्षाओं को मिलाकर इनके लिए गतिविधि/खेल/भ्रमण करवाया जाएगा।

उदाहरण के लिए वे कुछ बिन्दु जिन पर इस योजनान्तर्गत कार्य किया गया -

(1) वर्षा जल संग्रहण (रेन वॉटर हार्वेस्टिंग)

इस समय विद्यालय में हैण्डपम्प के निकट 'जल संग्रहण ढाँचे' (भूमिगत टैंक) का निर्माण किया जा चुका था, अत: विद्यार्थियों को इसके पास बड़े समूह में बिठाकर इसका महत्व समझाते हुए कार्य योजना बनाई गई। विद्यार्थियों के छोटे समूह बनाए गए।

प्रत्येक समूह को जिम्मेदारी दी गई कि वे फावड़ा-खुरपी से छोटी-छोटी एवं कुछ गहरी नालियों का निर्माण करें। ये नालियाँ पेयजल टंकी, मिड-डे-मील बर्तन सफाई के स्थान, छत से गिरने वाले नालों के स्थान से लेकर 'जल संग्रहण ढाँचे' की ओर ढलान लिए हुए हों।

सब नालियों के तैयार हो जाने के पश्चात् पुन: बड़े समूह में सब विद्यार्थियों को एकत्र कर चर्चा/प्रश्नोत्तर किए गए। इस समय तक प्रत्येक विद्यार्थी में इसकी अवधारणा स्पष्ट हो गई थी।

सभी विद्यार्थियों को अपने घर/खेत में भी उचित स्थान पर इस प्रकार की व्यवस्था किए जाने हेतु प्रोत्साहित किया गया। यह प्रोजेक्ट वर्क था, जिसके पूर्ण हो जाने पर उन्हें अपनी पुस्तिका में इसका विवरण लिखना था।

सम्पूर्ण गतिविधि में कुछ शिक्षिकाएँ एवं संस्था प्रधान स्वयं उपस्थित रहीं।

नाली निर्माण में यथास्थान सहायक कर्मियों द्वारा भी सहयोग किया गया।

जिस कक्षा में यह विषयवस्तु पाठ्यक्रम में थी, उसे दूसरे दिन कक्षा में पढ़ाया गया, जिसमें अधिक सहभागिता छात्राओं की रही।

(2) पॉलिथीन निषेध

बड़े समूह में शिक्षिकाओं के साथ सब छात्राओं द्वारा विद्यालय परिसर, खेल मैदान, विद्यालय चारदीवारी के बाहर चारों ओर भ्रमण एवं निरीक्षण किया गया।

सब छात्राओं को एक स्थान पर एकत्र कर उनसे वार्तालाप/चर्चा की गई- क्या-क्या देखा/कैसा लगा/ वे क्या चीजें हैं जिन्हें और बढ़ाएँ तो सुन्दरता बढ़े/ वे क्या चीजें हैं जो सुन्दरता खराब कर रही हैं। कचरा किस-किस प्रकार का है ?

> निर्धारित विषयवस्तु से सम्बन्धित कोई खेल, गतिविधि, अभिनय, गीत, कविता, घटनावर्णन, समाचार अथवा विषय विशेष की कतरनों को शरीर पर चिपकाकर कोलाज बनाने जैसा कोई कार्य किया जा सकता है, ताकि इस पर बच्चों के साथ आगे विस्तृत समूह चर्चा/बातचीत की जा सके। बहुत सामान्य से प्रतीत होने वाले ऐसे छोटे-छोटे प्रयोग भी यदि गम्भीरतापूर्वक विद्यालयों में क्रियान्वित किए जाएँ, तो विद्यार्थियों में अनुशासन, विद्यालय के प्रति अपनत्व की भावना, आत्मविश्वास, सीखने में रूचि एवं जागरूकता किसी हद तक बढ़ाई जा सकती है, ऐसा मेरा अनुभव एवं विश्वास है।

इस बात पर सभी एकमत थे कि स्थान-स्थान पर उड़ती पॉलिथीन पर्यावरण को प्रदूषित कर रही हैं, जानवरों को नुकसान पहुँचा रही हैं।

बालिकाओं ने स्वयं पहल कर कहा कि हम अभी सारी पॉलिथीन एकत्र कर जला देंगे। सब छात्राओं के छोटे-छोटे समूह बनाए गए एवं सब स्वच्छता कार्य में लगे। कुछ ही देर में सारी पॉलिथीन एवं कचरा एकत्र कर जला दिया गया।

पॉलिथीन का उपयोग नहीं करेंगे, न ही कचरा फैलाकर प्रदूषण बढ़ाँएगे, इस आशय की शपथ दिलाई गई।

अपने घर, मौहल्ले, परिवेश की स्वच्छता एवं पॉलिथीन हटाने सम्बन्धी कार्य प्रोजेक्ट रूप में दिया गया। छात्राओं द्वारा इसका विवरण अपनी नोटबुक में दर्ज किया गया।

जिस कक्षा के पाठ्यक्रम में यह विषयवस्तु थी, अगले दिन वहाँ इसका शिक्षण कराया गया।

(3) बैंक/पोस्ट ऑफिस/ हॉस्पिटल/ पंचायत भवन का भ्रमण एवं कार्य प्रणाली की समझ

बैंक/पोस्ट ऑफिस/ हॉस्टिल/ पंचायत भवन के भ्रमण हेतु सुविधानुसार पृथक-पृथक दिवस तय किया गया।

कम छात्र संख्या होने पर पूरी कक्षा एवं अधिक होने पर दो समूह में प्रक्रिया सम्पन्न की गई।

सम्बन्धित संस्था में पूर्व अनुमति लेकर उनकी सुविधानुसार समय तय किया गया।

इन संस्थाओं में भ्रमण के दौरान संस्थाप्रधान एवं दो शिक्षक मौजूद रहे।

बैंक - बैंक में ग्राहक समय समाप्ति से कुछ पूर्व उपस्थित होकर छात्राओं द्वारा शांतिपूर्वक कार्यवाही का अवलोकन

किया गया। (उस समय 2.00 बजे अपराह्न तक ग्राहक समय होता था।) ग्राहक समय समाप्ति के पश्चात् बैंक मैनेजर/बैंक कर्मी द्वारा छात्राओं को विभिन्न प्रकार के खातों/जमा एवं रकम निकासी पर्चियों/पासबुक/कार्यप्रणाली की जानकारी दी गई।

पोस्ट ऑफिस – पोस्ट ऑफिस में डाक बचत खाता, डाक रजिस्ट्री जैसे कार्यों की जानकारी उपलब्ध कार्मिक द्वारा दी गई।

अस्पताल– अस्पताल में स्टाफ की सुविधानुसार निर्धारित समय पर छात्राओं को एकत्र कर उपस्थित डॉक्टर/नर्स द्वारा प्राथमिक चिकित्सा, पट्टियों के प्रकार, पट्टी कैसे करें आदि को प्रायोगिक रूप से समझाया गया। अच्छे स्वास्थ्य पर परिचर्या करते हुए छात्राओं की शंकाओं का समाधान स्वास्थ्यकर्मी द्वारा किया गया।

पंचायत भवन – पंचायत भवन में उपस्थित सरपंच/वार्डपंच/संचिव द्वारा पंचायत सदस्यों के चुनाव, बजट, कार्यप्रणाली एवं उत्तरदायित्व पर चर्चा की गई। इस भ्रमण एवं सम्बन्धित संस्था की कार्यप्रणाली एवं अपने अनुभव को छात्राओं द्वारा अपनी नोटबुक में विस्तार से लिखा गया। जिन छात्राओं द्वारा इस भ्रमण में भागीदारी की गई, उन्हें अगले दिन प्रार्थना सभा में अपने अनुभव सुनाने का अवसर दिया गया। वैसे तो कभी–कभी विद्यालयों में मेडीकल स्टाफ/सरपंच/बैंककर्मी आदि को आमंत्रित कर उनकी परिचर्चा रखी जाती है, किन्तु स्थान विशेष पर उपस्थित रहकर कार्यप्रणाली को समझना विद्यार्थियों के लिए कभी न भुलाया जा सकने वाला अनुभव होता है।

(4) पर्यावरण संरक्षण (वृक्षारोपण)

वर्षा ऋतु में इस योजना को क्रियान्वित करते हुए क्रमशः कक्षावार खुले मैदान में परिचर्चा का आयोजन किया गया।

छात्राओं को सम्मिलित करते हुए योजना निर्माण किया गया कि किस प्रकार के पौधे/वृक्ष विद्यालय में लगाए जाएँ। छात्राओं द्वारा समूहवार क्यारियों/थाँवलों का निर्माण किया गया। विकास फंड से गमलों एवं नर्सरी से पौधों की व्यवस्था की गई। प्रत्येक छात्राओं को एक पौधा व्यक्तिशः भेंट कर उनसे अपना गमला/क्यारी/थाँवला तैयार करवाया गया। अपने पौधे की देखभाल, खाद–पानी की व्यवस्था का दायित्व छात्रा को व्यक्तिगत रूप से दिया गया। प्रत्येक पौधे पर छात्रा के नाम की तख्ती लगाई गई। प्रत्येक पौधे के रखरखाव/निरीक्षण के सम्बन्ध में रजिस्टर संधारण किया गया। प्रभारी द्वारा साप्ताहिक एवं संस्थाप्रधान द्वारा मासिक निरीक्षण कर पौधे की स्थिति एवं निर्देश को रजिस्टर में दर्ज किया गया। छात्राओं को इस सम्बन्ध में ग्रेडिंग दी गई। अपने सम्पूर्ण अनुभव को छात्राओं द्वारा अपनी पुस्तिका में लिखा गया।

ग्रीष्मावकाश/शीतकालीन अवकाश में सहायक कर्मियों को पौधों की देखभाल का उत्तरदायित्व दिया गया। मंत्रालयिक कार्मिकों द्वारा भी इस कार्य में सहायोग किया गया। यह अविश्वसनीय लग सकता है, किन्तु बच्चों की प्यार भरी जिद एवं निवेदन ने उन्हें अवकाशकाल में पौधों की देखभाल के लिए प्रेरित किया। (इन अवकाश में मंत्रालयिक कर्मी अपनी डयूटी पर उपस्थित होते हैं।)

छात्रों का विद्यालय भवन स्वच्छता, अपने पौधों की देखभाल एवं रखरखाव के लिए अपनत्व एवं समर्पण की भावना आश्चर्यजनक थी। उत्तरदायित्व सौंप देने पर बच्चे कितने अधिक जिम्मेदार हो जाते हैं, यह अनुभव हम सबके लिए चमत्कृत कर देने वाला था।

उपर्युक्त बिन्दुओं के अतिरिक्त कुछ और बिन्दु जो स्मृति में हैं, जिनका एक प्रोजेक्ट के रूप में कक्षाकक्ष से बाहर गतिविधि आधारिहत शिक्षण किया गया, उनका नामोल्लेख मात्र पर्याप्त है –

कचरे का सुरक्षित प्रबन्धन एवं निपटान, बूँद–बूँद जल संरक्षण, बिजली बचाएँ आदि।

कुछ शैक्षणिक खेल (मैदान में)– भाषायी खेल (विलोम/ पर्यायवाची/ संज्ञा–सर्वनाम/विशेषण–विशेष्य– क्रिया विशेषण), सामाजिक ज्ञान– भूगोल सम्बन्धी खेल (राज्य–राजधानी, देश–राजधानी, मंत्री–मंत्रालय, राज्य –नदियाँ, पर्वत, सागर, झीलें, पाठ्यक्रमानुसार। विज्ञान के सरल प्रयोग। रीति–रिवाज/पर्व–त्यौहार (किसी पर्व/त्यौहार के आने पर)। महापुरूषों की जीवनियाँ (जयन्ति आने पर) तम्बाकू एवं नशीले पदार्थों से होने वाले दुष्प्रभाव।

विशेष – शिक्षकों द्वारा अन्य कई ऐसी गतिविधियों का चुनाव किया जा सकता है, जो बच्चे को एक समझदार, जिम्मेदार और जागरूक नागरिक बनाए। उनमें प्रकृति, परिवेश एवं पर्यावरण के लिए संवेदनशीलता, सकारात्मकता एवं अपनत्व भाव पैदाकर इनके प्रति अपने उत्तरदायित्व का बोध कराए। उनमें उदार, मौलिक एवं वैज्ञानिक सोच का विकास करे।

निर्धारित विषयवस्तु से सम्बन्धित कोई खेल, गतिविधि, अभिनय, गीत, कविता, घटनावर्णन, समाचार अथवा विषय विशेष की कतरनों को शरीर पर चिपकाकर कोलाज बनाने जैसा कोई कार्य किया जा सकता है, ताकि इस पर बच्चों के साथ आगे विस्तृत समूह चर्चा/बातचीत की जा सके। बहुत सामान्य से प्रतीत होने वाले ऐसे छोटे–छोटे प्रयोग भी यदि गम्भीरतापूर्वक विद्यालयों में क्रियान्वित किए जाएँ, तो विद्यार्थियों में अनुशासन, विद्यालय के प्रति अपनत्व की भावना, आत्मविश्वास, सीखने में रूचि एवं जागरूकता किसी हद तक बढ़ाई जा सकती है, ऐसा मेरा अनुभव एवं विश्वास है। ❑

प्राथमिक शिक्षा में पठन-पाठन

शान्ति लाल जीनगर
प्राचार्य
पी एम श्री राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय,
जुंजाणी, जालोर (राज.)

शिक्षा शक्ति प्रदायिनी है, शिक्षा से मनुष्य की अन्तर्निहित शक्तियों का प्रकटन होता है उसकी जीवन दृष्टि विकसित होती है, व्यवहारगत परिवर्तन आता है, हमारा सौभाग्य है कि शिक्षा से हमें राष्ट्र सेवा का सुअवसर मिला है। हम चाहे विद्यालयों में कार्य कर रहे हैं अथवा कार्यालयों में हमारी प्रतिबद्धता समान है कि राज्य के प्रत्येक विद्यार्थी को गुणवतापूर्ण शिक्षा मिले।

जीवन एक ताजा गिरती बर्फ के समान है इस पर जैसे भी चला जाए, निशान अवश्य छूटते हैं। विश्वविख्यात 'हेलन केलर' जो जन्म से अन्धी थी से एक व्यक्ति ने पूछा कि आप सदैव प्रसन्नतचित्त कैसे रहती है तो उन्होंने जवाब दिया कि मैं प्रतिदिन यह मानकर चलती हूँ कि आज मेरे जीवन का अंतिम दिन है, क्यों नहीं मैं इस आखिरी दिन का पूरा आनंद उठालूँ। तो ऐसा क्या करें कि शिक्षा आनंददायी, उद्देश्यपरक हो सके।

बच्चों के सीखने की जरूरतें पूरी करना

बाल्यावस्था की शिक्षा से ही आज उत्कृष्ट पाठ्यक्रम और एक ऐसा शैक्षिक ढाँचा तैयार किया जाए जो बचपन वो तनावमुक्त कर उसे सँवारने का कार्य करें, क्योंकि यह अवस्था वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी महत्त्वपूर्ण हैं जैसी नींव का निर्माण इस अवस्था में होगा वैसे ही युवक-युवतियाँ देश को प्राप्त होंगे, ब्रेन के भीतर सिनैप्सेस गहरे होने का समय यही होने से ECCE पर सबसे ज्यादा ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है।

कक्षा में सभी बच्चे सृजनशील रहें

विद्यालय में नियमित रूप से ऐसे आयोजन होते रहने चाहिए जिससे उन्हें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अवसर प्राप्त हो सकें जैसे- भाषा मेला, गणित मेला, भाषा सप्ताह, गणित सप्ताह।

NEP 2020 में FLN (बुनियादी भाषा और संख्या ज्ञान) के उद्देश्य प्राप्ति में यह सहयोगी हो सकते हैं।

विभिन्न विषयों का उद्भव

मनुष्य के बच्चे जन्म से ही टेल्पलेस होते हैं, जानवरों के बच्चे जन्म के कुछ समय तक तेजी से सीखते हैं।

सभी प्राणियों में सिर्फ मनुष्य ही ऐसा है जो सोच सकता है, आब्जर्व करके निर्णय भी ले सकता है, इसलिए जीवन में सर्वप्रथम शिक्षा का ही प्रवेश हुआ, शिक्षा सबसे पहले आई, अन्य विषय शिक्षा के बाद आए।

क्रियाकलाप आधारित शिक्षण

- सभी विद्यार्थी अपने जीवन के उद्देश्य एक पृष्ठ पर लिखें।
- अपने सबसे अच्छे शिक्षक का नाम

बताओ और लिखो कि वे आपको क्यों अच्छे लगते हैं?

- अपने सबसे अच्छे मित्र का नाम बताओ और लिखो इसमें क्या-क्या अच्छाइयाँ हैं?
- कोई छोटा नाटक मंचित कर शीर्षक बच्चों से पूछें।
- जीवन कैसा होना चाहिए, कैसे जिएँ ?
- समय कैसे बिताएँ ?
- अच्छे भविष्य का इंतजार।
- मेरे सपनों का घर, विद्यालय, शिक्षक, गाँव, नगर, संसार।
- विद्यार्थियों के विचारों, संकल्पनाओं को इनसे बाहर लाया जाए।

बच्चों की अपेक्षाओं के अनुरूप शिक्षण और पाठ्यक्रम

वह पाठ्यक्रम और बच्चों की अपेक्षाओं, आकांक्षाओं पर शत प्रतिशत खरा उतरना ही चाहिए, शिक्षा में पाठ्यक्रम को लर्निंग आउटकमबेस बनाया जा रहा है तो मूल्यांकन भी आउटकम ठोस होना चाहिए।

किन्तु अभी भी हमारा ''रिपोर्टकॉर्ड'' कन्टेन्ट बेस है, योजनाओं के क्रियान्वयन में गतिरोध आ रहे हैं उन्हें किस प्रकार से दूर किया जाए।

हम सभी अपने-अपने हिस्से की जिम्मेदारी निभाएँ।

शिक्षा विषय के कार्य निष्पादन पर ध्यान दिया जाए

शिक्षक अपने विलय शिक्षण की परफॉर्मेन्स पर ध्यान दें, वह कैसी है इस पर विचार किया जाए, कक्षा शिक्षण में ICT एक सर्पोट है, यह टीचर का रूप नहीं ले सकता।

बच्चों को नये कॉन्सेप्ट क्या दिए जाएँ

यदि आप फिल्म ''वैल्डन डैड'' देखें तो उसमें भ्रष्टाचार को दिखाया गया है, ''थ्री इडियट्स'' फिल्म में क्लास रूप पर बहुत सारे कमेंट्स किए गए हैं, ''आरक्षण'' फिल्म में प्राइवेट कोचिंग का दबदबा। ''सुपर-30'' फिल्म में भी शिक्षा की वर्तमान दशा संघर्ष की कहानी है।

ई-कंटेन्टे निर्माण

आज प्रत्येक विषय का ई-कंटेन्ट बनाया जा रहा है जो कि अच्छी शुरूआत है, यदि हम प्रोएक्टिव नहीं है तो चीजें हम से छिन जाती है, कम्प्यूटर और डिजीटल साइन्स ने बहुत सारे कॉन्सेप्ट दिए हैं, शिक्षक अपने ही मोबाईल से वीडियो बनाकर कक्षा में दिखाएँ।

सतत् मूल्यांकन में बच्चों की परफोरमेंस को देखा जाए, उसका रिकॉर्ड रखा जाए।

शिक्षा का क्षेत्र विशाल है

आज हमारे बच्चे जितना स्कोर करते हैं, वे वास्तव में उतना हैं नहीं 'मेल फीमेल गेप, ''अरबन-रूरल गैप'' किस प्रकार पाटा जाए, स्टेट्स जानना और आगे बढ़कर कार्यवाही करना दोनों अलग-अलग बातें हैं।

- शिक्षक - शिक्षिकाएँ आत्मनिरीक्षण करें।
- उपलब्ध ज्ञान का रचनात्मक अतिक्रमण।

एक विषय का पाठ बहुत से संदर्भो से जुड़ा रहता है, अब यदि पाठ को शिक्षण के एक ही विषय और संदर्भ को दृष्टिगत रखते हुए पढ़ाया जाए तो यह शिक्षण आधा-अधूरा और एकांगी है।

शैक्षिक ढाँचे की एकरूपता

हमें बच्चों और शिक्षकों की बदलती हुई जरूरतों के साथ संगति बिठानी होगी।

देश का शैक्षिक ढाँचा एकरूपता लिए होना चाहिए, जिसमें विद्यार्थी अपने जीवन के फैसले स्वयं लेना सीखे, उन्नति के मार्ग उनके लिए खुले हों।

अपनी रुचि और सहजता के साथ अपने परिवार समाज और देश की भलाई, सेवा के लिए आगे बढ़ें, देखे गए सपने साकार करें।

शिक्षक, परिवार उनके साथ हर क्षण उपस्थित रहे किंतु एक सहायक और मित्र के रूप में हो।

बच्चों को ऐसा लगे कि हम अकेले नहीं है, जरूरत पड़ेगी तो सहायता अवश्य मिल जाएगी, हमें एक ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है।

मूल्यांकन की व्यावहारिकता

पढ़ना लिखना आज है और उसका मूल्यांकन 2 या 3 माह बाद में किया जाए, यह ठीक नहीं है।

जब शिक्षण हो रहा है तो उसका मूल्यांकन भी साथ-साथ किया जाएँ।

विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास कैसे हो

इसके लिए हमें डिफरेंट किस्म के टेस्ट डेवलप करने होंगे, उनका प्रयोग भी करना होगा, इस कार्य के लिए विशेषज्ञता की भी जरूरत है क्या? विद्यालय के पाठ्यक्रम, पाठ्य सहगामी क्रियाओं के द्वारा यह संभव है, इसका मूल्यांकन कैसे करेंगी।

शिक्षक-शिक्षिकाएँ पढ़ने के लिए आनंददायी वातावरण बनाएँ, धैर्य के साथ-साथ बाल मनोविज्ञान की गहरी समझ भी हमारे शिक्षकों में होनी चाहिए, इस हेतु सेवारत प्रशिक्षणों में अपनी महत्वपूर्ण सहभागिता सुनिश्चित करें।

शिक्षण संबंधित मॉड्यूल नई विकसित सामग्री और संबंधित विषय की पत्र-पत्रिकाएँ नियमित रूप से विद्यालय में मँगवाएँ और उसका अध्ययन करें।

ज्ञान का कभी भी और कहीं भी अंत नहीं है इसलिए कहा गया है कि ज्ञान अनंत है, असीम है-

हम भी करें शिक्षा में नवाचार

विद्यालय में आधारभूत सुविधाओं, मानवीय संसाधनों, समुदाय के सहयोग से विद्यालयों की छवि को बदला जा सकता हैं-

- सभी पात्र विद्यार्थियों हेतु अतिरिक्त गणवेश, टाई, बैल्ट, बैज, आई डी कार्ड।
- बोर्ड कक्षाओं के टॉपर्स हेतु ''सिल्वर मेडल''।
- राष्ट्रीय पर्व पर समस्त व्यवस्थाएँ भामाशाहों द्वारा।
- भव्य आकर्षक प्रवेश द्वार, माँ सरस्वती मंदिर, रंगमंच, झूले, फिसल पट्टी, बाल वाटिका, जल मंदिर, पर्याप्त संसाधनों से युक्त खेल मैदान, खेल सामग्री, पुस्तकालय।
- 250 9001 : 2015 सर्टिफाइड़ विद्यालय।
- हर हाथ कलम अभियान-ड्रॉप आउट फ्री ''उजियारी पंचायत''।
- पार्किंग सुविधा - तीन रौड़।
- बाल संसद - बैज निर्माण, विविध प्रमुख दायित्व।
- सम्पूर्ण विद्यार्थियों को हाउसवार-सदन आवंटन/प्रभारी,सहप्रभारी/ दलनायक/ सह दलनायक/पृथक ध्वज/दायित्व आवंटन।
- हेड स्बॉय, हेड गर्ल्स।
- स्टार ऑफ द मैथ, स्टूडेन्ट ऑफ द ईयर अवॉर्ड।

बाल्यावस्था की शिक्षा से ही आज उत्कृष्ट पाठ्यक्रम और एक ऐसा शैक्षिक ढाँचा तैयार किया जाए जो बचपन वो तनावमुक्त कर उसे सँवारने का कार्य करें, क्योंकि यह अवस्था वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी महत्त्वपूर्ण हैं जैसी नींव का निर्माण इस अवस्था में होगा वैसे ही युवक-युवतियाँ देश को प्राप्त होंगे, ब्रेन के भीतर सिनैप्सेस गहरे होने का समय यही होने से ECCE पर सबसे ज्यादा ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है।

- स्वच्छ जल के दूत अवॉर्ड।
- विविध क्लबों का गठन कर सुव्यवस्थित संचालन।
- स्काउट, गाइड।
- NSS
- जीवंत SOPW कैम्प आयोजन।
- कैरियर डे आयोजन-विशेषज्ञों से वार्ताएँ, पत्रक विमोचन, रिस्यू में निर्माण, काउन्सलिंग सेरान
- विविध संस्थाओं से सम्पर्क-CSR के तहत सहयोग प्राप्ति हेतु प्रयास, ग्राम पंचायत MP/MLA पद
- भामाशाह/ दानदाता/ पूर्व विद्यार्थियों परिषर निर्माण-व्हाट्स एप ग्रुप निर्माण, व्यक्तिगत सम्पर्क, आमंत्रण, बहुमान्य, व्यक्तियों से साक्षात्कार कार्यक्रम।
- NMMS, नवोदय परीक्षा हेतु परामर्श
- अतिरिक्त कक्षा संचालन।
- भामाशाहों को ''शिक्षा श्री'' ''शिक्षा भूषण'' शिक्षा विभूषण'' अवॉर्ड की जानकारी देना।
- विद्यार्थियों की प्रगति पर ''व्यक्तिगत ध्यान'' स्टूडेन्ट डायरी, संस्थाप्रधान की मासिक मोहर लगाकर।
- प्रतिभावान विद्यार्थियों का पृथक समूह निर्माण।
- पिछले वर्षों के टॉपर्स से चर्चा, प्रतिभाशाली विद्यार्थियों से संवाद।
- प्रभावी प्रार्थना सत्र-समस्त गतिविधियों युक्त।
- विद्यालय विकास की आयु/ दीर्घकालीन कार्य योजना बनाकर कार्य (Focus on test)।
- लगातार कई वर्षो से 100 प्रतिशत गुणात्मक बोर्ड परीक्षण परिणाम।
- फाइव स्टार विद्यालय।
- PM श्री विद्यालय - centre of excellence चयनित हो। ❑

शिक्षा और संस्कार एक दूसरे के पर्याय

प्रकाश वया
रामपोल बस स्टेण्ड भीण्डर, जिला – उदयपुर (राज.)

इस धरा-धाम पर मनुष्य ईश्वर द्वारा सृजित अनुपम और विलक्षण कृति है, इस शाश्वत और नैसर्गिक सच्चाई के सापेक्ष मानव जीवन को परिभाषित कर जीवन को जीने का कौशल और उसके मानकों का निर्धारण कर समय और परिस्थितियों के सापेक्ष प्रबुद्ध तत्त्व चिन्तकों ने मानव जाति को दिशा देने का महनीय कार्य किया है – सच्चाई तो यह है कि कालान्तर में वही संस्कार शिक्षा के मौलिक सूत्र उसके विकास के हेतु बनकर उसकी जीवन यात्रा को अनवरत फलदाई और शुभंकर साबित करते हुए उसकी अन्तश्चेतना को शुद्ध, बुद्ध और प्रबुद्ध कर उसे नर से नारायण बनने की मंगल भाव सम्पदा से अभिसिंचित कर देते हैं। मूलतः वैयक्तिक जीवन में संस्कारों का आरोपण भौगोलिक, सामाजिक साँस्कृतिक और धार्मिक परिवेश के सापेक्ष होता है, आगे के जीवन में संस्कार व्यक्ति के खान, पान, रहन-सहन, वेशभूषा और संस्कृति को प्रभावित करते हैं, व्यक्ति की आदतें और स्वभाव उसके संस्कारों का रूप लेते हैं जो कि उसकी जीवन शैली और चर्या का हिस्सा बन जाते हैं।

संस्कार व्यक्ति को जीवन जीने का सलीका देते हैं, उसके संसार का निर्माण करते हैं, हर माता-पिता की एकमेव आकांक्षा यही होती है कि उसकी संतति संस्कारी हो, इस अपेक्षा से हमें संस्कारों को सम्यक् और सकारात्मक तरीके से परिभाषित करना पड़ेगा तभी जाकर हम शिक्षा के माध्यम से परिवार समाज और राष्ट्र की अनमोल धरोहर को फलदाई और शुभंकर बनाकर एक सच्चे अच्छे और जिम्मेदार नागरिक के रूप में तराशने का, गढ़ने का महनीय कार्य करने में समर्थ होकर सफल हो सकेंगे। सच्चाई तो यह है कि संस्कारित और परिष्कृत बीज ही वाँछित फसल दे सकता है, इस अपेक्षा से हमारे बालक के अन्तस में ऐसे संस्कारों का वपन करना पड़ेगा जो उसके सद्‌गुणों को विकसित कर उसे स्व और पर कल्याणी बनाकर जीने का अभ्यासी बना दें। संस्कार से सीधा अर्थ ध्वनित होता है व्यक्ति का स्वभाव जो कि उसके जीवन में सकारात्मक और नकारात्मक दोनों रूपों में देखने को मिलता है, सकारात्मक संस्कार व्यक्ति के जीवन को उर्ध्वगामी बनाकर उसे सही दिशा प्रदान करते हैं इसके उलट नकारात्मक संस्कार उसे अधोगामी बनाकर उसे अर्थ हीन बना देते हैं। इस सच्चाई के सापेक्ष शिक्षा को सुसंस्कारों की वाहक बनकर बालक को श्रद्धावान, आत्म विश्वासी, संवेदनशील और गुणग्राही बनाना ही परिवार, समाज और राष्ट्र के लिए फलदाई और शुभंकर होता है। हमारा बालक स्वार्थी, दम्भी और संकीर्ण मानसिकता वाला ना बनें इसका ध्यान रखा जाना नितान्त

आवश्यक है, इसलिए शैक्षिक प्रबन्धन से जुड़े नियामकों को इस राष्ट्र के पारिवारिक, सामाजिक, साँस्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक ढाँचे के सापेक्ष जीवन मूल्याधारित पाठ्यक्रम (करीकुलम) को प्रमुखता देनी पड़ेगी तभी जाकर हम इस गौरवशाली राष्ट्र की विरासत को अक्षुण्ण रख पाएंगे। व्यक्ति के जीवन में संस्कार अतिशय महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि संस्कार से ही उसके मन और साँसारिक रिश्तों का निर्माण होता है तथा उसकी जीवन शैली प्रकृष्ट होती है। आध्यात्मिक दृष्टि से देखें तो संस्कार से संसार बनता है व्यक्ति की दुनिया संस्कारों से बनती है, फिर सृष्टि और दृष्टि भी इन्हीं से बनती है।

गीता हूँ, कुरान हूँ,
मुझको पढ़ इन्सान हूँ मैं।
चेहरों के इस जंगल में
खोई हुई पहचान हूँ मैं।।

जन्म-जन्मान्तर के संचित पुण्य कर्मों के आधार पर प्राप्त दुर्लभ मानव जीवन को सलीके और तरीके से एक सच्चा और अच्छा मनुष्य बनकर जीना ही हर नरदेह धारी की समझदारी है। जनसंख्या विस्फोट की अपेक्षा से आज नरमुण्डों का जंगल दिखाई पड़ता है, परन्तु मानवीय जीवन मूल्यों को आत्म-सात कर जीने का सम्यक् अभ्यासी व्यक्ति 'इन्सान' बनकर चेहरों के इस जंगल में अपनी पहचान बना सकता है। असल में आज मानव जाति जिस मुकाम पर पहुँची है निश्चित रूप से उसकी बौद्धिक क्षमता सामर्थ्य और कौशल (सूझ-बूझ) का परिणाम है। वस्तुतः आज के वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक और साँस्कृतिक परिवेश के सापेक्ष शिक्षा व्यक्ति में अन्तर्निहित क्षमता और सामर्थ्य का प्रकटीकरण कर उसे सार्थक जीवन जीने का अवसर प्रदान करती है, इसके साथ ही हमारे धर्म और संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित करने का सशक्त माध्यम शिक्षा है। वास्तविक अर्थ में शिक्षा व्यक्ति निर्माण की शाश्वत प्रक्रिया होकर उसे परिवार, समाज और राष्ट्र के लिए उपयोगी और जिम्मेदार नागरिक बनाकर इन संस्थाओं को मजबूती प्रदान करने का अहम कार्य करती है इस अपेक्षा से शैक्षिक ढाँचे का सम्यक् होना तथा उसका हमारी गौरवशाली साँस्कृतिक और स्वस्थ्य सामाजिक परम्पराओं का पोषण करने वाला होना भी फलदाई और शुभंकर हो सकता है। इस पावन धरा की माटी से उद्भूत नर पुंगवों ने ज्ञान, दर्शन और अपने चारित्रिक बल से मानव जाति को जो सुधोपम जीवन रस प्रदान किया, निश्चित रूप से लोक कल्याणकारी सिद्ध होने के साथ ही इन्सान को इन्सान के रूप में जी कर दुर्लभ मानव जीवन को सार्थक करने का स्वर्णिम अवसर प्रदान कर रहा है। सच्चाई तो यह है कि अज्ञान मानव जीवन के लिए अभिशाप है, अज्ञानी व्यक्ति किंकर्तव्य विमूढ़ होकर लक्ष्य विहीन जीवन जीने का अभ्यासी बन जाता है और फिर भटकना उसकी नियति बन जाता है। मानव और पशु की जीवन चर्या में जमीन आसमान का अन्तर होता है, मनुष्य शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक दृष्टि से अन्य प्राणियों की अपेक्षा से अतिशय सम्पन्न, समृद्ध, सुन्दर और सुघड़ होता है, साथ ही उसके अन्तस में व्युत्पन्न भावों और संवेदनाओं की अभिव्यक्ति के लिए सम्यक् भाषा का होना भी उसकी विशिष्टताओं का हिस्सा है जो उसे जिन्दगी को सलीके और तरीके से जीने का अभ्यासी बनाता है।

जिस तरह का पारिवारिक, सामाजिक और साँस्कृतिक परिवेश दिखाई दे रहा है, निश्चित रूप से चिन्ता जनक है, इस सच्चाई को स्वीकार करते हुए शैक्षिक ढाँचे को समग्र रूप से खंगाल कर बालक जो कि परिवार, समाज और राष्ट्र की अनमोल धरोहर है, प्राण तत्त्व है को आत्म विश्वासी, परिश्रमी, सहिष्णु और कर्मनिष्ठ बना कर सामाजिक जीवन के ताने बाने को सुदृढ़ किया जाना संभव है, इस अपेक्षा से शिक्षा जो कि संस्कार प्रदात्री है कि उपादेयता और महत्ता को समझते हुए हमें आगे बढ़ना होगा।

जंगली जानवर की तरह जीवन यापन करने वाला मनुष्य आज जिस मुकाम पर पहुँचा है निश्चित रूप से उसकी क्षमता और सामर्थ्य का ही परिणाम है, जिसके बूते पर जीवन को जीने की शैली और कला का विकास होता रहा, अदम्य जिजीविषा ने अपने बाहुबल और बुद्धि के सम्यक् समन्वय से अपने प्राप्य को सुलभ करने में सफल होने के साथ ही खगोल और भूगोल के गूढ़तम रहस्यों को उद्घाटित करने में महती सफलता अर्जित कर अपने आपको किसी हद तक इस सृष्टि का नियंता सिद्ध कर इन पर अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया।

मनुष्य ज्ञान पुञ्ज है, असीम बौद्धिक क्षमता का धारक है जिसके बल पर उसने प्रकृति को अपने अनुकूल बनाने का अहर्निश प्रयास कर उसका गहनता से संश्लेषण-विश्लेषण कर मानव जाति को ज्ञान की अपेक्षा से चरमोत्कर्ष पर आरूढ़ कर दिया है, परन्तु वैश्विक स्तर पर साम्राज्यवादी और विस्तारवादी मानसिकता ने ज्ञान-विज्ञान को जिसे मानव के कल्याणार्थ होना चाहिए, पर प्रश्न चिह्न लगा दिया है और कभी-कभी ऐसा लगता है कि मानव जाति बारूद के ढेर पर खड़ी है। आपसी सौहार्द, समरसता और भरोसे पर संकट साफ तौर पर देखा जा सकता है। सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा काश्चिद् दु:ख भाग्भवेत् और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसी उदात्त भाव सम्पदा से समृद्ध इस पुण्य धरा की माटी ने मानव जाति को ''जीओ और जीने दो का संदेश देकर सेवा, सहयोग, समर्पण और संवेदनशीलता के उदात्त वैचारिक धरातल पर मानव जाति को आरूढ़ कर उसे सम्यक दिशा देकर मानव जाति को उपकृत किया है। सच्चाई तो यह है कि संस्कार जो कि हमारे जीवन मूल्य, सामाजिक और साँस्कृतिक परम्पराओं के पर्याय हैं और शिक्षा इनकी संवाहक है, संधारक है। शिक्षा के माध्यम से ही शाश्वत जीवन मूल्यों और परम्पराओं को संरक्षित और सर्वधित किया जाकर ही व्यक्ति के अन्तस में इनका आरोपण किया जाना सम्भव है।''

इस सच्चाई के सापेक्ष शैक्षिक ढाँचे को सुदृढ़ बनाकर परिवार, समाज और राष्ट्र के लिए शिक्षार्थी को एक सच्चे और अच्छे इन्सान के रूप में गढ़ा जा सकता है, असल में देखा जाय तो व्यक्ति की कार्य शैली, स्वभाव और आदतें उसके संस्कारों का दर्पण है, इसलिए शैक्षिक प्रबन्धन, सम्यक् शिक्षा नीति और तद्नुरूप पाठ्यक्रम (करी कुलम) जो कि हमारे सामाजिक और साँस्कृति ढाँचे को पारम्परिक जीवन मूल्यों के सापेक्ष सुदृढ़ कर सके सम्प्रति चिन्तन आवश्यक है। हाल ही में घोषित नई शिक्षा नीति - 2020 में देश के मूर्धन्य शिक्षा विदों द्वारा व्यापक और विशद् विमर्श करते हुए जो खाका तैयार किया गया है, यदि उसे शिक्षा से जुड़े मनीषियों द्वारा सम्यक् तरीके से ईमानदारी पूर्वक लागू करने का प्रयास किया जाएगा तो निश्चित रूप से सुखद् और फलदाई परिणाम आ सकते हैं।

वस्तुतः शिक्षा और संस्कार एक दूसरे के पर्याय हैं, मानव जाति के लिए वही शिक्षा फलदाई और शुभंकर हो सकती है जो व्यक्ति के जीवन को संस्कारित कर उसे जीवन जीने का सलीका और तरीका देकर एक सच्चे और अच्छे इन्सान के रूप में तराश कर परिवार, समाज और राष्ट्र के लिए जीना सिखाती है और यही शिक्षा का मूल उद्देश्य है। सम्प्रति जिस तरह का पारिवारिक, सामाजिक और साँस्कृतिक परिवेश दिखाई दे रहा है, निश्चित रूप से चिन्ता जनक है, इस सच्चाई को स्वीकार करते हुए शैक्षिक ढाँचे को समग्र रूप से खंगाल कर बालक जो कि परिवार, समाज और राष्ट्र की अनमोल धरोहर है, प्राण तत्त्व है को आत्म विश्वासी, परिश्रमी, सहिष्णु और कर्मनिष्ठ बना कर सामाजिक जीवन के ताने बाने को सुदृढ़ किया जाना संभव है, इस अपेक्षा से संस्कार प्रदात्री है शिक्षा की उपादेयता और महत्ता को समझते हुए हमें आगे बढ़ना होगा। ❑

Ganitha Kalika Andolana – A Joyful Way of Learning Math

Pushpa Thantry

Director - Programs,
Akshara Foundation,
Bangalore

Akshara Foundation's Mathematics Programme started in the year 2010. It has been a movement ever since, adopted and implemented by the Government of Karnataka, in partnership with Akshara Foundation. With its tagline "aadi kali, maaditili" ("Play and Learn, Do and understand" in Kannada) the main objective of this programme is to make mathematics learning fun and to ward off the fear of math in children of grades 1 to 5. Subsequently Akshara Foundation collaborated with the Government of Odisha to implement GKA 1.0 in the state.

The National Curriculum Framework (NCF) 2005 recommends activity-based group learning and a constructivist approach. We have been working with government school math teachers in grades 1-5 to create such an environment for their students. The idea is to enable teachers to teach state-prescribed math concepts in a meaningful and purposeful manner. To do this, we partnered with the State Government of Karnataka.

The State Government supplied the GKA 1.0 kit of Teaching Learning Materials (TLMs), a Teacher's TLM Handbook, and math concept cards. Akshara Foundation conceptualised and designed to 44,000+ schools in Karnataka. This is now an ongoing mainstream programme in Karnataka since 2010. A similar implementation strategy is deployed in Odisha where GKA 1.0 covers 32,000+ schools. More than 60,000+ teachers have been trained in GKA 1.0 in the two states using the State Governments' cascade training model. Ganitha Kalika Andolana is also mentioned in the NIPUN Bharat document [6, p. 165] as one of the best state-level math learning initiatives in the country.

Relevance of TLMs in Learning Mathematics

GKA 1.0 has proved to be a successful programme harvesting promising outcomes. Subsequently

Teacher as a Facilitator Mathematics can become linear and passive when teachers enter a classroom to "teach" how to solve a given abstract problem. However, we want mathematics to be a dynamic subject. This shift will only happen when we go from being teachers to facilitators. So, what is the difference? Traditionally, a teacher has always been someone who feeds into the students' brains all the information they need without necessarily considering their intelligence and inner knowledge. On the other hand, a facilitator takes her students through a lesson by inviting their voices and gently nudging them to construct their learning.

Akshara Foundation, in conjunction with Samagra Shikshana Karnataka (SSK) and senior, handpicked government school math teachers, developed GKA 2.0 for grades 6, 7 and 8 with a separate set of TLMs for the higher-grade concepts. Akshara Foundation is implementing GKA 2.0 as a pilot in selected schools in Bangalore.

Ganitha Kalika Andolana 1.0 and 2.0 are an effort towards changing how mathematics is taught in our schools. Our attractive TLMs provide a hands-on approach to learning mathematics. The use of TLMs is also backed by sound pedagogy and thorough research.

Teaching Learning Materials, also known as manipulatives, are a vital part of learning mathematics in a formal school setting. Studies have shown that TLMs are found to be helpful in many ways.

"They are instrumental when introducing an unfamiliar topic as they help visualise how math works. They act as a "catalyst to deepen mathematical understanding." [1, p. 340]

"When children explore concepts using TLMs, it allows teachers to observe their thought patterns and notice where they falter. [1, p. 342]

"TLMs help children organise, record and communicate mathematical ideas in more ways than one. [2, p. 4-5]

"TLMs also clarify confusing ideas that children may find hard in purely symbolic form. [2, p. 288]

In addition, using TLMs is aligned with the constructivist approach encouraged by the National Education Policy 2020 (NEP 2020). It helps children construct their understanding using concrete materials (for concept clarity), discuss their interpretations through group learning, and then gradually master abstract procedural knowledge.

Math phobia can be warded off "by putting something concrete into the hands of the student." The 2006 Position Paper by the National Council of Educational Research and Training (NCERT) [4, p. 8] also talks about the fear of mathematics in children mainly because of the emphasis placed on them to gain procedural fluency at the expense of conceptual understanding. The Concrete - Representational - Abstract (CRA) approach, the guiding principle of GKA,and the use of TLMs appear to be apparent solutions.

From a policy standpoint, NEP 2020 mentions how mathematical thinking is very important for India's future. [5, p. 15] In such a scenario, building an in-depth understanding of foundational concepts introduced at the middle school level, such as algebra and geometry, is essential. Through GKA, we attempt to implement the NEP 2020 recommendations in the classroom and help strengthen the future of our country.

How to Successfully Teach Mathematics Using the GKA Kit

Any TLM is as good as the teacher's effectiveness in conveying a concept. Studies have shown that committed, well-trained teachers can use TLMs, effectively, provided they believe in the efficacy of the TLMs. [1, p. 339] For the effective use of TLMs, the teacher may need to break down the abstract way and develop a deeper understanding of the mathematical concept. This requires the teacher to indulge in the TLMs and the concept and see how best it can guide a child. Along with all this, preparing a classroom of students to work with the TLMs, classroom management, and setting structures for the collection, distribution, and maintenance of materials are critical for a successful mathematics lesson.

It is important to note that the GKA TLM kit is designed to be handled by teachers and students. It is not meant to be used for demonstration by the teacher. Instead, children should actively interact with the materials to develop a deeper conceptual understanding.

Here are a few things to keep in mind to make the most out of GKA.

1. The 4 Cs

Constructivism: It is an educational approach that believes children actively construct or make their own knowledge. Learners use their previous knowledge as a foundation and build on it with new things they learn. We, as educators, should create such an environment for learning. This can be easily achieved with the help of TLMs in mathematics.

Teachers are facilitators in this process and they observe the children; they should not teach them anything; instead, they should give opportunities to the children to create their own knowledge. Even if they make mistakes, teachers should not correct them. The facilitator should try to understand what the child has understood. He/she can engage in a dialogue with the child and nudge him/her in the right direction.

However, the construction of knowledge does not happen in a short time. Many opportunities need to be given. Teachers/facilitators must be more mindful about ensuring higher-order thinking in students. They can make students use multiple TLMs for a given concept and explain many concepts with one TLM. This task helps students think out of the box.

Collaborative and Cooperative Learning: This requires children to work in groups with their peers. This kind of learning also helps them to use their math vocabulary and challenge group members' thinking. It also brings to the forefront different ways of solving problems. There are more details about this in the upcoming section on Classroom Management.

Continuous and Comprehensive Evaluation (CCE): Assessment and Evaluation are as critical as teaching. It informs the teacher how much students have learnt, what they struggle with, and where to pick up from in the next class. We often think of evaluation in terms of formative and summative assessments. CCE means incorporating both these methods, but done continuously and not periodically. This vital part of a teacher's job is made easy with GKA. In the GKA approach, strategies such as group learning, the 5Es, and the CRA method help the teacher gather accurate qualitative data on his/her students on an everyday basis.

Conversation in the Classroom- Using Math Vocabulary: Another critical aspect of learning math is to be able to talk about it. Very often, math classes have minimal discussion about anything other than discussing steps in a procedure or recollecting formulae, theorems, or axioms, especially from middle school onwards. When asked to talk about math, children do not know how to go about it. They have not been allowed to do so in a typical pedagogy model with a top-down approach. The teacher speaks and the student listens and there is no scope for conversations in math classrooms.

TLMs are tools that help children construct their learning and help teachers and students express their understandings more critically. It encourages students to have math conversations and in turn, bring alive one of the visions of mathematics learning in NCERT. It says, "children see mathematics as something to talk about, to communicate, to discuss among themselves, to work together on." [4, p. 2]

Mathematics is a language, a language for understanding the physical world around us. Without the language of mathematics, we cannot find answers to many things in the world. Mathematics is the language that quantifies the world. To understand many subjects of science, the language of mathematics is very necessary. Take a square or a rectangle. To interpret this shape requires a mathematical language. The value of its area can be found using two dimensions, length and width. By this we get the formula (generalisation) for the area of another figure. Arithmetically we find the value of a geometric figure and arrive at the generalisation formula algebraically. The clarity of these basic concepts of mathematics is essential for learning subjects like science, statistics, economics, etc. A child should be able to learn and use the language of mathematics competently through the three dimensions of geometry, arithmetic, and algebra.

2. Concrete-Representational -Abstract Approach

GKA uses the CRA approach for mastering concepts. As the name suggests, this involves learning mathematics in three stages.

First, the child can explore TLMs to understand the concept in the concrete stage. The child is allowed to construct her/his knowledge here. GKA's TLMs being sensorial help, the child visualises and works with the concepts.

Secondly, the representational stage requires the child to work on his/her square-ruled book. This step

acts as a bridge between concrete and abstract. Although this stage may look similar to the concrete stage, it is helpful for individual learning. It will also help students recall concepts when they go back home or while revising concepts months later. It helps in a smooth transition from concrete to abstract.

In the abstract stage, the teacher begins to induct children into a procedural understanding of the concept already introduced and aims to build fluency by increasing complexity in a scaffolded manner. This stage also includes children applying their learnings to real-life situations through word problems. The CRA approach is in line with one of NCERT's visions for mathematics. It emphasises teaching children essential mathematics and that just equating math "with formulas and mechanical procedures does great harm". [4, p. 2]

Manipulatives are most useful while introducing a new concept. This is the stage where students require the most amount of structure or assistance. When the concept is understood this support structure should be reduced or eliminated. This will ensure that all learners have a chance to understand a concept deeply.

3. The 5 Es Model

Engage phase: Each new concept must be introduced using a story or an activity, drawing upon students' earlier knowledge.

Explore phase: A common base is provided using teaching aids from the kit. Students explore the material and get a feel for the concepts and processes.

Explain phase: This is the group learning stage, where students discuss and solve problems with their peers and frame their own problems.

Elaborate phase: Students develop a deeper and broader understanding of concepts and refine their skills using square-lined books and textbooks.

Evaluate phase: The students' understanding of concepts and skills is assessed individually by giving them tasks. The teacher constantly observes and assesses as children work in groups

4. Classroom Management

a. Forming Groups : Set up groups at the beginning of the year. Follow these guidelines to create the groups. Each group has -

i. Learners of mixed level - average, below-average, and above-average levels.

ii. A mix of girls and boys.

iii. Children with different socio-economic backgrounds are equally distributed.

iv. Not more than 5 to 6 members in each group.

v. Members are named 'A', 'B', 'C', and so on, which is common to each group.

b. Working in Groups : Children first explore the concepts in groups using various manipulatives. The GKA kit has multiple TLMs for understanding the same concept. Hence each group will tackle the same problem using a different TLM from the kit. Conversely, one TLM can be used to learn multiple concepts. Please see the many-to-many mappings between TLMs and concepts in the GKA teachers and TLM handbook manual.

c. Strategies of Group Learning :

i. Facilitator-driven: The facilitator gives a problem that a group must solve. Say, 'A' from each group must explain the solution to the class. The question can be asked by rotation to each member.

ii. Group-driven: A group leader from one group goes to the next group, gives them a problem, and observes. Each group leader shares their observations with the class.

iii. Group leader-driven: Each group leader presents we group members with a problem and asks them to explain the solution to the group.

iv. Group member-driven: Each group member poses a problem to his/her group, and the rest come up with the solution and explain their solutions to the group.

v. Teacher as a Facilitator : Mathematics can become linear and passive when teachers enter a classroom to "teach" how to solve a given abstract problem. However, we want mathematics to be a dynamic subject. This shift will only happen when we go from being teachers to facilitators. So, what is the difference? Traditionally, a teacher has always been someone who feeds into the students' brains all the information they need without necessarily considering their intelligence and inner knowledge. On the other hand, a facilitator takes his/her students through a lesson by inviting their voices and gently nudging them to construct their learning. Through GKA 1.0 and 2.0, we urge the teachers of the primary and higher primary grades to take on the role of facilitation in their classrooms and help students enjoy and be active rather than passive in math teaching and learning. ❑